पप्रच्छ गौतमस्य पुत्रास्ति संवृतं लोके यस्मिन्मां धास्यस्यन्यतमो वाध्वा तस्य मा लोके धास्यसीति स होवाच नाहमेतद्वेद, हन्ताचार्यं पृच्छानीति। स ह पितरमासाद्य पप्रच्छेतीति मा प्राक्षीत्कथं प्रतिब्रवाणीति। स होवाचाहमप्येतन्न वेद सदस्येव वयं स्वाध्यायमधीत्य हरामहे यन्नः परे ददत्येह्युभौ गमिष्याव इति। स ह समित्पाणिश्चित्रं गार्ग्यायणिं प्रतिचक्रम उपायानीति। तं होवाच ब्रह्मार्होऽसि गौतम: यो मामुपागा एहि त्वा ज्ञपयिष्यामीति १

(भाषार्थ)–उपनिषदोंमें प्रसिद्ध गार्ग्यके पुत्र चित्रने, ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करनेके लिये अरुणके पुत्र आरुणिका वरण किया। इन आरुणि उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतुने कहा, कि–हे श्वेतकेतो ! तू चित्रको यज्ञ करा। श्वेतकेतु पिताकी आज्ञाके अनुसार चित्रके घर गया और चित्रके दिये हुए आसन पर बैठा। चित्रने उससे कहा, कि–हे गौतम गोत्र में जन्म लेनेवाले श्वेतकेतो ! ऐसा कोई गुप्तस्थान है, कि–जिस स्थानमें तू मुझे यज्ञ कराकर बाँधकर रक्खेगा, इसका तात्पर्य यह है, कि–हे श्वेतकेतो ! हम यज्ञके द्वारा जिस

स्थानमें जाना चाहते हैं वह स्थान गुप्त कहिये वहिर्मुख पुरुषों को अज्ञात है या नहीं ? जो यज्ञके द्वारा उस स्थानको पाते हैं उनको सकल प्राणियोंमें एकात्मदर्शी होनेकी आवश्यकता है या नहीं ? और उनको फिर इस लोकमें लौटकर आना पडता है या नहीं? । यह सुनकर श्वेतकेतुने उत्तर दिया, कि- मैं इस बातको नहीं जानता, अतः इस बातको मैं अपने आचार्य से बूझूंगा तदनन्तर श्वेतकेतु ने अपने पिता आरुणिके पास जाकर चित्रका कियाहुआ प्रश्न निवेदन किया और बूझा, कि-मैं भी इस प्रश्नका क्या उत्तर दूं, आरुणि ने कहा, कि-मैं भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं जानता । चलो हम चित्र की सभा में पहुंचकर, इस प्रश्न का उत्तर वेद के किस विभाग में है और इस का अर्थ क्या है, इस बातको जानलें । जब कि गौतम गोत्रवालों को और सब ही विद्या-धनका दान देते हैं तो चित्र भी हमको विफलमनोरथ नहीं करेगा, यह निश्चित है, इस लिये चलो, हम दोनों उसकी सभा में चलें, इतना कहकर आरुणि हाथमें समिधा ले गार्ग्य के पुत्र चित्र के पास गये और ऊपर लिखे प्रश्न का उत्तर जानने के लिये उसके शिष्य बनगये, उस समय चित्र ने

आरुणि से कहा, कि—हे गौतम गोत्रमें उत्पन्न हुए आरुणे! तुम ब्रह्मवेत्ताओं के माननीय हो, तुम्हें किसीप्रकार का अभिमान नहीं है, आओ तुम्हें स्पष्ट उत्तर दूंगा, किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहने दूंगा ॥ १ ॥

स होवाच ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति तेषां प्राणैः पूर्वपक्ष आप्यायते अथाऽपरपक्षे न प्रजनयति। एतद् वै स्वर्गस्य लोकस्य द्वारं यश्चन्द्रमास्तं यः प्रत्याह तमतिसृजतेऽथ यएनं न प्रत्याह तमिह वृष्टिर्भूत्वा वर्षति। स इह कीटो वा पतङ्गो वा शकुनिर्वा शार्दूलो वा सिंहो वा मत्स्यो वा परश्वा वा पुरुषो वाऽन्यो वैतेषु स्थानेषु प्रत्याजायते यथाकर्म यथाविद्यं तमागतं पृच्छति कोऽसीति। तं प्रतिब्रूयाद्विचक्षणादृतवो रेत आभृतं पञ्चदशात्प्रसूतात्पित्र्यवतस्तन्मा पुंसि कर्त्तर्येरयध्वम्। पुंसा कर्त्रा मातरि मा निषिक्त, स जायमान उपजायमानो द्वादश त्रयोदश उपमासो द्वादशत्रयोदशेन पित्राऽसं तद्विदेऽहं प्रतितद्विदेऽहं

तन्म ऋतवोऽमर्त्यव आरभध्वम् । तेन सत्येन तपसा ऋतुरस्म्यार्त्तवोऽस्मि कोऽस्मि त्वमस्मीति तमतिसृजते ॥ २ ॥

(भाषार्थ)—चित्रने कहा, कि—जो स्वर्ग पानेकी इच्छासे अग्निहोत्र आदि अपने वर्ण और आश्रम के लिये विधान किये हुए सकल कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं वे अपने आश्रमों में स्थित सकल सकाम अधिकारी पुरुप, इस शरीर को त्यागने के अनन्तर धूम आदिके क्रमसे दक्षिण नामक पितृयानमार्गके द्वारा चन्द्रलोकमें जाते हैं। उन के प्राण और इन्द्रियोंके द्वारा शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है। कृष्णपक्षमें चन्द्रमाके क्षीण होजानेसे उस समय कोई भी इस लोकमें प्रवेश नहीं करसकता है। यह दीखनेवाला चन्द्रबिम्ब ही शास्त्रमें लिखाहुआ चन्द्रलोक है और इस चन्द्रलोकको ही भुवलोक पर्यन्त स्वर्गका द्वाररूप कहा है। जो चन्द्रलोकके भोगको तुच्छ मानकर उसका तिरस्कार करदेते हैं, वे इस लोकको लाँघ कर विद्युत् आदिके क्रमसे उत्तर नामक देवयान मार्गके द्वारा आदित्यलोक आदिमें गमन करते हैं और जो ऐसा नहीं करते हैं उनके भोगका क्षय होनेपर भोगनेसे

शेष रहे कर्मोंके साथ फिर इस लोकमें वर्षाकी धाराओंके साथ आना पडता है। इसलोकमें तैसे जीवोंका जन्म भी उसे भोगनेसे शेष रहेहुए कर्मके अनुसार ही होता है। वह कर्म यदि अत्यन्त अशुभ होता है तो स्थावरयोनि मिलती है यदि कुछ एक शुभ होता है तो जङ्गमका जन्म मिलता है। जङ्गमोंमें भी शुभाशुभ कर्मकी न्यूनाधिकताके अनुसार कोई कीट, कोई पतङ्ग, कोई पक्षी कोई सिंह व्याघ्र आदि पशु कोई मत्स्य आदि जलजन्तु और सर्प आदि होकर जन्म लेता है। शुभाशुभ कर्म मिलेहुए हों तो मनुष्यका जन्म मिलता है। उसमें भी कर्म ज्ञान आदिकी न्यूनाधिकताके अनुसार स्त्रीका शरीर पुरुषका शरीर, द्विजका देह वा शूद्रका शरीर मिलता है। पुनर्जन्मके समय परमपुण्यवान् पुरुष के सौभाग्यवश गुरुरूप अन्तर्यामी परमात्माकी समीपता मिलती है। उस समय दक्षिण और उत्तर दोनों प्रकारके मार्गसे भ्रष्ट हुए जीवात्मासे परमात्मा प्रश्न करते हैं, कि–तू कौन है? उस समय शिष्यरूप जीवात्मा उनसे कहता है, कि–मैं अनेकों प्रकारके भोग देनेमें समर्थ, वसन्त आदि ऋतुरूप पञ्चदशकलात्मक प्रकृतिके विकाररूप, पितरोंसे भरे

हुए चन्द्रलोकमेंसे वीर्यरूपमें आकर स्थित हुआ जीव हूं। इस वीर्यभावको प्राप्त हुए मुझको देवता ग्राम्यधर्मका अनुष्ठान करनेवाले पुरुषमें प्रेरणा करते हैं। फिर वे मुझे पुरुषके द्वारा मातामें सींचते हैं। मैं मनुष्यरूपसे प्रकाशित होनेके लिये जन्म लूंगा, इसलिये बारह वा तेरह महीनेवाले संवत्सर नामवाले कालके द्वारा ही मेरा यह मनुष्य जीवन परिमित होगा और इसके लिये मैं इस सम्वत्सर नामक कालके साथ तादात्म्यको प्राप्त अर्थात् मरणशील हुआ हूं। मेरा यह जन्म तत्त्वज्ञानके लिये है या अतत्त्वज्ञानके लिये है इस बातको मैं नहीं जानता। मेरे इस जीवनकी सकल ऋतुएं तत्त्वज्ञानकी पूर्ण पुष्टिके लिये आरम्भ हों। मैं सत्य बात कहता हूं। यह पुनर्जन्मजनित कष्ट मुझे कालात्मभाव अर्थात् मर्त्यभावने और देहात्मभाव अर्थात् जडभावने प्राप्त कराया है। मैं कौन हूं? क्या मैं यह मर्त्य शरीररूप हूं? अथवा तू ही मैं अर्थात्—मुझसे अभिन्न तेरी शक्तिरूप अंश ही मैं हूं?। जिसके भाग्यमें जन्म धारण करनेके समय इसप्रकारकी परमात्माकी समीपता होती है, भगवान् उसको संसारके पार पहुंचनेमें सहायता देनेवाली

ब्रह्मविद्याको प्राप्त करनेमें अनुकूल पड़नेवाला ही जन्म देते हैं ॥ २ ॥

स एतं देवयानं पन्थानमापद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स आदित्यलोकं स वरुणलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकं तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्य आरो ह्रदो मुहूर्त्ता येष्टिहा विरजा नदील्यो वृक्षः सालज्यं संस्थानमपराजितमायतनमिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ विभुप्रमितं विचक्षणासन्द्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यवयतौ वै च जगान्यम्बाश्चाम्बायवीश्चाप्सरसः अम्बया नद्यस्तामित्थं विदागच्छति तं ब्रह्मा ह्यभिधावत मम यशसा विरजां वा अयं नदीं प्रापन्न वा अयं जरयिष्यतीति ॥ ३ ॥

(भावार्थ) ब्रह्मज्ञानी पुरुष आगे कहेहुए देवयान मार्गको प्राप्त होकर पहिले अर्चिरभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, फिर क्रमसे दिनके अभिमानी आदि देवताओंको प्राप्त होतेहैं भौमदेवलोको लांघ भुवर्लोकमेंके वायुके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, फिर आदित्यके अभिमानी देवताको प्राप्त होकर

चन्द्रलोक और विद्युत्लोकको प्राप्त होते हैं। तदनन्तर अमानव पुरुषके द्वारा क्रमसे वरुणलोक और इंद्रलोकमें जाते हैं। तदनन्तर महरादि लोकमें स्थित प्रजापतिकी सहायता से तपोलोकको लांघतेहुए सत्यलोक में पहुंचते हैं। अन्तमें इस सत्यलोक और इसके बाहरके क्षितिसे लेकर प्रकृति पर्यन्त आठ आवरणों को तोडते हुए ब्रह्मलोक वा मोक्षधाममें प्रवेश करते हैं। इस ब्रह्मलोकके बाहरी भागमें एक 'आर' नाम का हृद (सरोवर) है, उस हृदके तटपर मुहूर्त्तके अभिमानी देवता रहते हैं। मुक्त पुरुषको इस हृदके पार पहुंचादेना ही उनका काम है। यह हृद पुरुषके सकल कार्मों को नष्ट करनेवाली विरजा नदीके नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्मलोकमें तालके वृक्षकी समान धनुषकी डोरीके आकारसे अनेकों पदार्थ सजेहुए हैं, अनेकों जीवोंके निवासरूप नगर हैं और जिनका कोई तिरस्कार न करसकै ऐसे अनेकों स्थान शोभा पारहे हैं। इन्द्र और प्रजापति ये ब्रह्मपुरीके द्वारकी रक्षा करते हैं। विभु विज्ञान इस पुरीका सभास्थान है। बुद्धि आदि इस सभाके मध्यकी वेदी हैं। अमितवली प्राण तहांकी सभाका मञ्च है। स्वयं प्रकृति तहांकी तेजोमयी

प्रतिच्छाया है। सकल जीव पुष्प और वस्त्र हैं। जगज्जननी सकल श्रुतिय और श्रुतियोंके अनुकूल बुद्धियें तहांकी साधारण स्त्रियें हैं। उपासना तहांकी नदी है। जो ब्रह्मलोककी ऐसी महिमाको जानते हैं, वे ही ब्रह्मलोकको पाते हैं उनके पहुंचने पर ब्रह्माजी प्रसन्न होकर अपनी सेविकाओंको आज्ञा देते हैं, कि—इस ब्रह्मज्ञानी पुरुषको आदरभावके साथ मेरे पास लाओ ॥ ३ ॥

तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतियन्ति शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फलहस्ताः शतमञ्जनहस्ताः शतं मालाहस्तास्तं ब्रह्मालङ्कारेणालंकुर्वन्ति स ब्रह्मालंकारेणालंकृतो ब्रह्म विद्वान् ब्रह्माभिप्रैति स आगच्छत्यारं ह्रदं तं मनसात्येति। तमृत्वा सम्प्रतिविदो मज्जंति स आगच्छति मुहूर्त्तान्येष्ठिहांस्तेऽस्मादपद्रवन्ति स आगच्छति विरजां नदीं तां मनसैवात्येति तं सुकृतदुष्कृते धूनुते। तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतम्। तद् यथा रथेन धावयन् रथचक्रे पर्यवेक्षत एवमहोरात्रे पर्य-

वेच्चत एवं सुकृतदुष्कृते सर्वाणि च द्वन्द्वानि स एव विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान् ब्रह्मे- वाभिप्रैति ॥ ४ ॥

(भाषार्थ)-ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार पाँच सौ अप्सरायें इस ब्रह्मज्ञानीके सामने आजाती हैं उनमेंसे एक सौ हरिद्राका चूर्णआदि माङ्गलिक वस्तु लेकर, एकसौ नाना प्रकारके वस्त्र लेकर, एक सौ अनेकों प्रकारके गहने लेकर एक सौ नाना प्रकारके फल मूल लेकर और एक सौ हाथोंमें मालायें लेकर उसकी सेवा और सजावट करती हैं ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्मलोकके उपयोगी इन सब वस्त्र भूषण आदिसे शोभायमान होकर ब्रह्मलोकमें ही रहते हैं । वह पहिले "आर,, नामवाले सरोवरके तटपर आते हैं। सकाम अज्ञानी पुरुष किसी कर्मके द्वारा इस आर नामक ह्रदको प्राप्त होजाने पर भी इसके पार नहीं होसकते हैं किन्तु उस में डूबे ही पड़े रहते हैं । निष्काम ब्रह्मज्ञानी पुरुष इस आर नामक ह्रदके पार होकर ब्रह्मलोकमें जापहुंचते हैं । उनके आजाने पर काम क्रोध आदि वृत्तियोंको उत्पन्न करनेवाला इष्टिहनामक मुहूर्त्त उसके समीपसे भागजाता है, उस समय

वह विरजा नामवाली नदीको मनसे ही पार होजाता है, वह अपने पुण्य और पापको इस स्थान पर ही त्यागजाता है। उसके मित्र और जाति आदिके प्रिय पुरुष सुकर्मके फलको और अप्रिय दुष्कर्मके फलको भोगते हैं। निष्काम कर्म करनेवालेके साथ फलका सम्बन्ध किसप्रकार नहीं होता है उसका दृष्टान्त यह है, कि—जैसे रथमें सवार होकर यात्रा करनेवाले पुरुषके रथका पहिया भूतलके साथ संयोग और वियोगरूप फलको प्राप्त होता है, रथके सवारको यह फल प्राप्त नहीं होता है, तैसे ही कर्मकर्त्ताके प्रिय और अप्रिय पुरुष कहिये मित्र और शत्रु ही फलके भागी होते हैं कर्म-कर्त्ता फलका भागी नहीं होता है, उसके विषयमें दिन और रात सुकृत और दुष्कृत तथा सुख दुःख आदि द्वन्द्व कुछ नहीं करसकते हैं, इसलिये ब्रह्मज्ञानी पुरुष पुण्य पापसे रहित होकर ब्रह्मको ही प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

स आगच्छतील्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति। स आगच्छति सालज्यं संस्थानं तं ब्रह्मरसः प्रविशति। स आगच्छत्यपराजितमायतनं तं ब्रह्मतेजः

प्रविशति । स आगच्छति इन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ तावस्माद्पद्रवतः । स आगच्छति विभु प्रमितं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति । स आगच्छति विचक्षणामासन्दीं बृहद्रथन्तरे सामनी पूर्वौ पादौ श्यैतनौधसे चापरौ । वैरूपवैराजे अनूच्ये शाकररैवते तिरश्ची । सा प्रज्ञा, प्रज्ञया हि विपश्यति । स आगच्छत्यमितौजसं पर्यङ्कम् । स प्राणस्तस्य भूतश्च भविष्यच्च पूर्वौ पादौ । श्रीश्चेराचापरौ । बृहद्रथन्तरे अनूच्ये । भद्रयज्ञायज्ञीये शीर्षण्ये । ऋचश्च सामानि च प्राचीनातानि । यजूंषि तिरश्चीनानि । सोमांशव उपस्तरणमुद्गीथ उपश्रीः श्रीरुपबर्हणम् । तस्मिन् ब्रह्मास्ते । तमित्थंवित् पादेनैवाग्र आरोहति । तं ब्रह्मा पृच्छति कोऽसीति तं प्रतिब्रूयात् ॥ ५ ॥

(भावार्थ)—ब्रह्मज्ञानी इल्य ब्रह्मके समीप में आता है, उस समय पहिले कभी अनुभव नहीं किया हुआ गन्ध उसकी नासिका में प्रवेश करता है, वह सालज्य स्थान में आता है, उस समय ब्रह्मरस उस के शरीर में प्रवेश

करता है वह अपराजित स्थानमें आता है उस समय ब्रह्मतेज उसके शरीरमें प्रवेश करता है, ब्रह्मतेज के प्रवेश करने पर वह ब्रह्मको प्राप्त होता है, उस समय द्वार की रक्षा करनेवाले इन्द्र और प्रजापति चलेजाते हैं। तदनन्तर यह ब्रह्मज्ञानी विभु नामक सभास्थानमें आता है, उस समय उसमें फिर ब्रह्मतेजका प्रवेश होता है। ब्रह्मतेज के प्रवेश करने पर वह विचक्षणा नामकी वेदीके समीप आता है। बृहद्रथन्तर नामके दोनों साम उसके अगले दो पाये हैं। श्यैत नौधस नामक दो साम उसके पिछले पाये हैं। वैरूप और वैराज नामक दो साम उसके दक्षिण उत्तर के दो कोने हैं और शाक्वर रैवत नामके दो साम उसके पूर्व पश्चिमके कोने हैं, ऐसी चौकोर वेदीका नाम प्रज्ञा है। प्रज्ञाके द्वारा अनेकों विषयोंका दर्शन होता है। प्रज्ञाको पानेके अनन्तर यह ब्रह्मज्ञानी अमितौजा पलँग के समीप पहुंचता है। प्रसिद्ध प्राण इस पलँग के भूत भविष्यत् नामक अगले दो पाद हैं। श्री और भूशक्ति इस के पिछले दो पाद हैं। बृहद्रथन्तर नामके दो साम इसके दक्षिण उत्तरके बड़े २ खट्वाङ्ग हैं। भद्रयज्ञायज्ञीय

नामके दो साम उसके पूर्व और पश्चिमके छोटे२ खट्वाङ्ग ऋक् और साम उसकी बड़ी २ पट्टी हैं, यजु और समूह उसके छोटे सेरुए हैं। सोमकिरणें उसका उपस्तरण (गद्दा) है उद्गीथ उसका आच्छादनवस्त्र (पलँगपोश) है। श्री तकिया है। इस पलँग पर ब्रह्माजी पौढते हैं : जो इसको जानते हैं वे पहिले चरणके द्वारा इस पलँग चढ़ते हैं। पलँगपर चढ़नेके समय ब्रह्माजी इस ब्रह्मज्ञानी उपासक से कुछ प्रश्न करते हैं। पहिला प्रश्न है- तू कौन है ? उपासकका उत्तर तथा अन्य प्रश्न क्रमसे कहते हैं ॥ ५ ॥

ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः संभूतो भार्यै रेतः संवत्सरस्य तेजो भूतस्य भूतस्य भूतस्यात्म- भूतस्य त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मीति तमाह कोऽहमस्मीति। सत्यमिति ब्रूयात् । किं तद यद् सत्यमिति । यदन्यद् देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत् सदथ। यद् देवाश्च प्राणाश्च तद् यं तदेतया वाचाभिव्याहृतये। सत्यमित्येवदिदं सर्वमिदं सर्व- मसि। इत्येवैनं तदाह (तदेतच्छ्लोकेनाप्युक्तम्)

यजूदरः सामशिरा असावृङ्मूर्तिरव्ययः । स ब्रह्मेति स विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्ममयो महानिति ॥ तमाह केन पौंस्यानि नामान्याप्नोषीति प्राणेनेति ब्रूयात्केन स्त्रीनामानीति वाचेति केन नपुंसकनामानीति मनसेति केन गन्धानिति घ्राणेनेति ब्रूयात्केन रूपाणीति चक्षुषेति केन शब्दानिति श्रोत्रेणेति केनान्नरसानीति जिह्वयेति केन कर्माणीति हस्ताभ्यामिति केन सुखदुःखे इति शरीरेणेति केनानन्दं रतिं प्रजातिमित्युपस्थेनेति केनेत्या इति पादाभ्यामिति केन धियो विज्ञातव्यं कामानिति प्रज्ञयेति प्रब्रूयात्तमाहापो वै खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति सा या ब्रह्मणि जितिर्या व्यष्टिस्तां जितिं जयति तां व्यष्टिं व्यश्नुते य एवं वेद य एवं वेद ॥ प्रथमोऽध्यायः।

उपासक मैं वसन्त आदि ऋतुस्वरूप हूं, मैं ऋतुओं से संबन्ध रखनेवाला हूं। स्वप्रकाशस्वरूप अविकार उपादान कारण से मेरी उत्पत्ति हुई है। इस संवत्सरका तेज,अतीत, कारणरूप और चार प्रकार के प्राणी तथा पांच प्रकार के

महाभूतों का जो आत्मा है, वह आत्मा तू ही है, जो तू है, मैं भी वही हूं। उस से ब्रह्म ने कहा कि-मैं कौन हूं?। उसने उत्तर दिया, कि-तुम सत्य हो। ब्रह्मा-जिसको तू सत्य कहता है वह क्या वस्तु है?। उपासक-देवताओं से और प्राणों से जो भिन्न है वही सत् है और देवता तथा प्राण त्य हैं। चराचर विश्व इस त्य शब्द से ही व्यवहार कियाजाता है। इसप्रकार यह जोकुछ भी वस्तुमात्र है सो सब सत्य शब्दसे ही कहाजाता है, इस कारण तुम ही सर्वरूप हो। इस प्रकार ब्रह्मा ने उपासक के प्रश्नों का उत्तर दिया। ऋग्वेदीय श्लोक में भी ऐसा ही कहा है। यजुर्वेद जिसका उदर है, सामवेद जिस का मस्तक है, ऋग्वेद जिसकी मूर्त्ति है, वह ही अविनाशी ब्रह्म है। वही ब्रह्मा है, उसको ही ब्रह्ममय महान् ऋषि जानो। ब्रह्मा ने उससे कहा, कि-तूने मेरे पुंल्लिङ्गसम्बन्धी सकल नामों को कैसे जाना?। उपासक ने कहा, कि-प्राण के द्वारा। ब्रह्मा-तूने मेरे स्त्रीनामोंको कैसे जाना?। उपासक-वाक्के द्वारा। ब्रह्मा-तूने मेरे नपुंसक नामोंको कैसे जाना? उपासक-मन के द्वारा। ब्रह्मा—तूने गन्धोंको कैसे जाना?

उपासक—प्राण के द्वारा। ब्रह्मा—रूपको कैसे जाना ?। उपासक—चक्षुके द्वारा। ब्रह्मा-शब्दोंको कैसे जाना ?। उपासक-कर्ण के द्वारा। ब्रह्मा—अन्नके सकल रसों को कैसे जाना ?। उपासक-जिह्वा के द्वारा। ब्रह्मा-सकल कर्म किस प्रकार सिद्ध होते हैं ?। उपासक—हाथों के द्वारा। ब्रह्मा सुख दुःख को जाननेमें कारण क्या है ?। उपासक-शरीर। ब्रह्मा—आनन्द,रति और सन्तानोत्पत्तिका कारण क्या है ?। उपासक-उपस्थ। ब्रह्मा-गति कैसे होती है ?। उपासक-चरणों के द्वारा। ब्रह्मा-सकल विषयों का ज्ञान और कामों का ज्ञान किस प्रकार की बुद्धि की वृत्ति से होता है ? उपासक-प्रज्ञा नाम की बुद्धि की वृत्ति से। यह सुनकर ब्रह्मा ने उस से कहा कि—जल ही निश्चय मेरे निवासस्थान हैं। मेरा जो यह लोक है वह भी जलमय ही है, इस लिये तेरा लोक भी जलमय ही है जो उपासक इस तत्त्व को जानजाता है, ब्रह्मकी विजय और व्याप्ति उस के वश में होजाती है ॥ ६ ॥

प्रथम अध्याय समाप्त

—०—

द्वितीय अध्याय ।

प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कौषीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं । वाक् परिवेष्ट्री चक्षुर्गोप्तृ । श्रोत्रं संश्रावयितृ । तस्मै वा एतस्मै प्राणाय ब्रह्मण एताः सर्वा देवता अयाचमानाय बलिं हरन्ति । तथो एवास्मै सर्वाणि भूतान्ययाचमानायैव बलिं हरन्ति । य एवं वेद तस्योपनिषन्न याचेदिति । तद् यथा ग्रामं भिक्षित्वा अलब्ध्वोपविशेन्नाहमतो दत्तमश्नीयामिति । य एवैनं पुरस्तात्प्रत्याचक्षीरंस्त एवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इति । एष धर्मो याचतो भवति । अनन्तरस्त्वेवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इति ॥ १ ॥

(भाषार्थ)-कौषीतकिने कहा, कि-जो वस्तु प्राण नामसे प्रसिद्ध है वह ब्रह्म ही है । यह प्राणरूप ब्रह्म राजा है । मन उसका दूत है । वाक्रूप इन्द्रिय उसकी परोसनेवाली है । चक्षु उसका रक्षक है । श्रोत्र उसका इधर उधरका समाचार देनेवाला द्वारपाल है । इस प्राणरूप ब्रह्मको ये सकल देवता

बिना मांगे ही बलि अर्पण करते हैं। जो इस तत्त्वको जानता है उससे उपनिषद् पहिलेसे ही कुछ भी याचना नहीं कराते। इस विषयमें यह दृष्टान्त है, कि–जैसे कोई पुरुष सारे ग्राममें भिक्षा माँगताहुआ तहांसे कुछ भी न मिलने पर निराश होकर बैठ रहता है और अपने मन ही मनमें ऐसा सङ्कल्प करता है, कि मैं अब इस ग्राममें कोई कुछ स्वयं देगा तो उसको भी नहीं लूंगा। परन्तु ऐसा सन्तोषी बनकर बैठजाने पर जिन्होंने उस याचकको भिक्षा देनेसे निषेध करादिया था वेही फिर स्वयं आकर उससे याचना करते हैं, कि–तुम हमसे कुछ लेलो, तैसे ही उपनिषद् भी इस प्राणतत्त्वके ज्ञाता पुरुषके समीप स्वयं बिना याचना कराये ही उपस्थित होजाते हैं। यह धर्म ही हरएक पुरुषको परमात्मासे याचना करना चाहिये। अयाचक पुरुषके समीप आकर ही लोग कहा करते हैं, कि मैं तुमको कुछ दूंगा॥ १॥

प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह पैङ्ग्यस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो वाक् परस्ताच्चक्षुरारुन्धे, चक्षुः परस्तात् श्रोत्रमारुन्धे, श्रोत्रं परस्तान्मन आरुन्धे, मनः परस्तात्प्राण आरुन्धे, तस्मै वा एतस्मै प्राणाय

ब्रह्मणे एताः सर्वा देवता अयाचमानाय बलिं हरन्ति तथो एवास्मै सर्वाणि भूतानि अयाचमानायैव बलिं हरन्ति, य एवं वेद तस्य उपनिषन्न याचेदिति तद् यथा ग्रामं भिक्षित्वाऽलब्ध्वोपविशेन्नाहमतो दत्तमश्नीयामिति । य एवैनं पुरस्तात्प्रत्याचक्षीरं-स्त एवैनं उपमन्त्रयन्ते ददाम त इत्येष धर्मो याचतो भवति । अन्यतस्त्वेवैनं उपमन्त्रयन्ते ददाम त इति।

(भाषार्थ)-पैंग्यने कहा, कि—प्राण नामसे प्रसिद्ध जो वस्तु है वह ही ब्रह्म है । इस प्राणरूप ब्रह्मकी वाक् इन्द्रिय से अगली दर्शनेन्द्रिय वाक् इन्द्रियको ढककर स्थित रहती है । इस दर्शनेन्द्रियको ढककर श्रवणेन्द्रिय स्थित है । मन इस श्रवणेन्द्रियको आवरण करके स्थित है । परन्तु प्राण-इस मनको भी आवरण करके स्थित रहता है । इस प्राणरूप ब्रह्मको अपने अधिष्ठात्री देवताओं सहित ये सब इन्द्रियें विना याचना किये ही भेंट देती हैं, तैसे ही सकल भूत इस प्राण रूप ब्रह्मको विना याचनाके ही बलि देते हैं । जो इस तत्त्व को जानते हैं उनके समीप उपनिषद् तैसे ज्ञानकी उत्पत्तिसे पहिले ही कुछ भी याचना न करने पर भी पीछे अयाचित

भावसे आश्रयकी प्रार्थना करते हैं। इस विषयमें दृष्टान्त है, कि–कोई पुरुष समस्त ग्राममें भिक्षा माँगने पर कुछ न पाकर आगेको उस ग्रामका अन्न न ग्रहण करनेका निश्चय करके सन्तोषी बन बैठता है तो पहिले निषेध करनेवाले ही सब पुरुष पीछेसे जैसे विना याचना किये ही कुछ देनेके लिये उसके पास आते हैं, तैसे ही इस प्राणतत्त्ववेत्ताको समझो ऐसे अयाचक का धर्म ही हरएक जीवको प्रार्थना करने योग्य है, ऐसे अयाचक पुरुषको ही दान देनेके लिये लोग आग्रह किया करते हैं॥ २॥

अथ एकधनावरोधनम् । यदेकधनमभिध्यायात् पौर्णमास्यां वा अमावास्यायां वा शुद्धपक्षे वा पुण्ये नक्षत्रेऽग्निमुपसमाधाय परिसमूह्य परिस्तीर्य पर्युक्ष्योत्पूय दक्षिणं जान्वाच्य स्रुवेण वा चमसेन वा कंसेन वैता आज्याहुतीर्जुहोति। वाङ्नाम देवतावरोधिनी। सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धाम् तस्यै स्वाहा। प्राणो नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धाम् तस्यै स्वाहा । चक्षुर्नाम देवतावरोधिनी, सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धाम् तस्यै स्वाहा । श्रोत्रं

नाम देवतावरोधिनी, सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा। मनो नाम देवताऽवरोधिनी, सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा। प्रज्ञा नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहेति। अथ धूमगन्धं प्रजिघ्रायाज्यलेपेनाङ्गान्यनुविमृज्य वाचंयमोऽभिप्रव्रज्यार्थं ब्रुवीत दूतं वा प्रहिणुयाल्लभते हैव॥ ३॥

(भाषार्थ)--अब एकत्र धनसंग्रह का उपाय कहते हैं। यदि एकमात्र प्राणरूप धनका सर्वभाव से ध्यान करना चाहे तो पूर्णिमा, अमावास्या वा शुक्लपक्षके पुण्यनक्षत्रमें अग्नि स्थापन करके तृणादिको हटाना, कुशाओंका आस्तरण करना, मंत्रसे पवित्र किये हुए जलके द्वारा प्रोक्षण और आज्यसंस्कार करनेके अनन्तर दाहिनी जंघाको भूमि में लगाकर स्रुव आदिके द्वारा आगे लिखे "वाङ्नाम" इत्यादि मंत्रोंसे घी की आहुति देय। उन मंत्रोंका अर्थ यह है--वाक्नामवाली देवता उपासकके अभिलषित अर्थको देनेवाली है; यह देवता धनपतिके समीपसे मेरे अभिलषित अर्थ को सम्पादन करै, इस देवताके निमित्त यह आहुति दीगई।

प्राण नामवाली देवता उपासकके इच्छित विषयको सिद्ध करने वाली है, यह देवता धनपतिके पाससे मेरे अभिलषित अर्थको सिद्ध करै। इस देवताके लिये यह आहुति दी गई। चक्षु नामवाली देवता उपासकके अभीष्ट कामको सिद्ध करनेवाली है, यह देवता धनपतिके समीपसे मेरी अभिलाषा को सिद्ध करै, इस देवताके लिये यह आहुति दीगई। श्रोत्र नामवाली देवता उपासकके अभीष्ट कामको सिद्ध करनेवाली है, यह देवता धनपतिके समीपसे मेरी अभिलाषाको सिद्ध करै, इस देवताके लिये यह आहुति दीगई। मन नामवाली देवता उपासकके इच्छित कामको सिद्ध करनेवाली है, यह देवता धनपतिके समीपसे मेरी अभिलाषाको सिद्ध करै, इस देवताके निमित्त यह आहुति दीगई। प्रज्ञा नामवाली देवता उपासकके इच्छित कामको सिद्ध करनेवाली है, यह देवता धनपतिके समीपसे मेरी अभिलाषाको सिद्ध करै, इस देवता के निमित्त यह आहुति दीगई। होमके अनन्तर होमके धुएं को सूंघै, घृतलेपके द्वारा अङ्गका लेपन कर मौन होकर धन के स्वामीके समीप जाय और 'तुम्हारे पाससे मेरा अभिलषित अर्थ सिद्ध हो' ऐसी प्रार्थना करै। धनपति दूर देशमें

हो तो उसके पास दूत भेजे । ऐसा करनेसे अपना अभीष्ट अर्थ सिद्ध होगा ॥ ३ ॥

अथातो दैवः स्मरो यस्य प्रियो बुभूषेद् यस्यै वा एषां वै तेषामेवैकस्मिन् पर्वण्यग्निमुपसमाधायैतयैवावृतैता आज्याहुतीर्जुहोति । वाचं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । प्राणं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । चक्षुस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । श्रोत्रं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । मनस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । प्रज्ञां ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहेति । अथ धूमगन्धं प्रजिघ्रायाज्यलेपेनाङ्गान्यनुविमृज्य वाचंयमोऽभिप्रव्रज्य संस्पर्शं जिगमिषेदपि वाताद्वा संभाषमाणस्तिष्ठेत्, प्रियो हैव भवति स्मरन्ति हैवास्य ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-अब सकाम उपासककी वाक् आदि देवताओंके द्वारा सिद्ध होनेयोग्य अभिलाषा किसप्रकार सिद्ध होती है सो कहते हैं । जो प्राणके तत्त्वको जाननेवाला जिस पुरुषका, वा जिस स्त्रीका वा इन प्रत्यक्ष राजा आदिका वा वाणी आदिकी अधिष्ठात्री देवता आदिका प्रिय होनेकी अभि-

लाषा करै वह किसी पर्वके दिन अग्निस्थापन आदिके अनन्तर आगे लिखी घृतकी आहुतियें देय। आहुति देनेके मंत्रों का अर्थ इसप्रकार है-तुम्हारी वाणी मेरा प्रयोजन सिद्ध करने के लिये इस अग्निमें आहुत होती है। तुम्हारा प्राण मेरे लिये इस अग्निमें आहुत होता है। तुम्हारा चक्षु मेरे लिये इस अग्निमें आहुत होता है। तुम्हारा श्रोत्र मेरे लिये इस अग्निमें आहुत होता है। तुम्हारा मन मेरे लिये इस अग्नि में आहुत होता है। तुम्हारी प्रज्ञा मेरे लिये इस अग्निमें आहुत होती है। तदनन्तर धुएंकी गन्धको सूँघकर और घृत-लेपको शरीरमें मलकर तथा मौन धारण करके प्रेमपात्रके समीप जाय और उसका स्पर्श पानेकी इच्छा करै। यदि प्रेम-पात्र व्यक्ति दूरदेशमें होय तो वायुकी सहायतासे उसके साथ संभाषण करनेकी इच्छा करै। ऐसा करनेसे उपासक अपने इष्टव्यक्तिको प्रिय होजायगा वह इष्टव्यक्ति उसको स्मरण करने लगेगा ॥ ४ ॥

अथातः सांयमनं प्रातर्दनमान्तरमग्निहोत्रमित्या चक्षते। यावद्वै पुरुषो भाषते न तावत्प्राणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि जुहोति। यावद्वै पुरुषः

प्राणिति न तावद्भाषितुं शक्नोति वाचं तदा प्राणे जुहोति । एते अनन्ते अमृताहुती जाग्रच्च स्वपंश्च सन्ततमव्यवच्छिन्नं जुहोति । अथ या अन्या आहुतयोऽन्तवत्यस्ताः कर्ममय्यो हि भवन्त्येतद्ध वै पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं न जुहवाञ्चक्रुः ॥ ५ ॥

(भाषार्थ)–प्राणब्रह्मकी उपासना के अनन्तर बाहरी अग्निहोत्र को करने की शक्ति न हो अथवा करनेकी इच्छा न हो तो उसके लिये हिंसा आदिरहित प्रातर्दन नामक आन्तर (भीतरी) अग्निहोत्र कहा है। पुरुष जबतक वाणी का व्यापार करता रहता है तबतक प्राण का व्यापार नहीं करसकता, उस समय प्राण का वाणी में हवन कर देता है और पुरुष जबतक प्राणका व्यापार करता रहता है तबतक वाणी के व्यापार को नहीं करसकता, उस समय वाणीका प्राण में हवन करदेता है । ये वाणी और प्राण असंख्यों व्यापारों के आश्रय हैं और जाग्रत् में तथा स्वप्नमें निरन्तर बेरोकटोक अमृत की आहुतियें देते रहते हैं। वाक्य और प्राण ही अमृत की आहुति हैं । इनको छोडकर और जो आहुति हैं वे सब नाशवान् और कर्मरूप हैं अर्थात् शरीरके व्यापार

से साध्य हैं। जो वाणीरूप अग्निमें प्राणरूप घृत की और प्राणरूप अग्नि में प्राणरूप घृत की आहुति देने को ही कर्त्तव्य समझते हैं वे फिर बाहरी अग्निहोत्र का अनुष्ठान नहीं करते हैं, किन्तु वे सकल सङ्गोंके त्यागरूप संन्यासको ही धारण करते हैं॥ ५ ॥

उक्थं ब्रह्मेति ह स्माह शुष्कभृङ्गारस्तदृगित्युपासीत। सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्यायाभ्यर्च्यन्ते तद् यजुरित्युपासीत, सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते। तत्सामेत्युपासीत, सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्याय संनमन्ते। तत् श्रीरित्युपासीत, तद् यश इत्युपासीत, तत् तेज इत्युपासीत तद् यथैतच्छस्त्राणां श्रीमत्तमं यशस्वितमं तेजस्वितमं भवति। तथो एवैवं विद्वान् सर्वेषां भूतानां श्रीमत्तमो यशस्वितमस्तेजस्वितमो भवति। तमेतमैष्टकं कर्ममयमात्मानमध्वर्युः संस्करोति। तस्मिन् यजुर्मयं प्रवयति। यजुर्मय ऋङ्मयं होता, ऋङ्मये साममयमुद्गाता स एष सर्वस्यै त्रयीविद्याया आत्मैष उ एवास्यात्मा एतदात्मा भवति य एवं वेद॥६॥

(भाषार्थ)-एक शुष्कभृङ्ग नामवाले मुनि थे, वह उक्थ नामवाले प्राणको ही ब्रह्म कहगये हैं। उस उक्थ नामवाले प्राणको ही ऋग्वेद मानकर उसकी उपासना करै । जो ऐसा मानकर उसकी उपासना करता है उसको सब ही प्राणी श्रेष्ठ मानते हैं और सब प्रकारसे उसकी पूजा करते हैं। इस उक्थ नामवाले प्राणकी ही यजुर्वेद बुद्धिसे उपासना करनी चाहिये, जो ऐसा करते हैं सकल प्राणी उनको श्रेष्ठ मानकर उनके साथ मिले रहते हैं। इस उक्थ नामवाले प्राणकी ही सामवेदबुद्धिसे उपासना करै जो ऐसा करते हैं उनको सब ही प्राणी श्रेष्ठ मानकर प्रणाम करते हैं। इस उक्थ नामवाले प्राणकी ही श्रीबुद्धिसे उपासना करनी चाहिये, उसकी ही यशबुद्धिसे और तेजोबुद्धिसे उपासना करनी चाहिये। सकल शस्त्रों में धनुषकी समान उक्थ नाम वाला प्राण ही परम विभूतिमान् बड़ा यशस्वी और महातेजस्वी है। जो इस तत्त्व को जानते हैं वे सकल प्राणियों में बड़े भारी श्रीमान्, बड़े यशवाले और महातेजस्वी होते हैं। अध्वर्यु इस इष्टकासम्बन्धी कर्ममय "आत्मस्वरूप प्राण का ब्रह्मबुद्धिसे संस्कार करते हैं। ऋत्विक् उसमें यजुर्वेदसे

होनेवाले सकल कर्मोंका सम्पादन करते हैं। होता उसमें ऋग्वेदसे होनेवाले सकल कर्मोंका सम्पादन करते हैं। उद्गाता उसमें सामवेदसे होनेवाले गानकर्मका सम्पादन करते हैं। यह प्राण सम्पूर्ण त्रयीविद्याका आत्मा है, जो इस तत्त्वको जानते हैं वे तन्मय होजाते हैं ॥ ६ ॥

अथातः सर्वजितः कौषीतकेस्त्रीण्युपासनानि भवन्ति। यज्ञोपवीतं कृत्वाप आचम्य त्रिरुदपात्रं प्रसिच्योद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठते। वर्गोऽसि पाप्मानं मे वृङ्धीत्येतयैवावृता मध्ये सन्तमुद्वर्गोऽसि पाप्मानं म उद्वृङ्धीत्येतयैवावृतास्तं यन्तं सम्वर्गोऽसि पाप्मानं मे सं वृङ्धीति। यदहोरात्राभ्यां पापं करोति सं तद् वृङ्क्ते ॥ ७ ॥

(भाषार्थ)—अब सर्वविजयी कौषीतकि की देखीहुई तीनप्रकार की उपासना के विषयको कहते हैं—यज्ञोपवीत धारणके अनन्तर आचमन करके शुद्ध जलसे जलपात्रको भरकर उदय होते हुए सूर्यकी उपासना करै। उपासना के 'वर्गोऽसीत्यादि' मन्त्रका अर्थ यह है, कि —तृणकी समान जानते हुए इस सम्पूर्ण जगत् को त्यागकर वर्ग नामसे

प्रसिद्ध है। तू मेरे पहिले और आगे के सकल पापोंका नाश कर। इसप्रकार हीं मध्यान्ह कालके सूर्यकी भी उपासना करै और इसप्रकार ही अस्त होते हुए सूर्यकी उपासना करै। इसप्रकार आचमन करने पर दिनका किया हुआ और रात्रिका किया हुआ सब पाप नष्ट होजाता है ७

अथ मासि मास्यमावास्यायां पश्चात् चन्द्रमसं दृश्यमभानमुपतिष्ठेतेतयैवावृता हारितृणाभ्यां वाक् प्रत्यस्यति यत्ते सुसीमं हृदयमधि चन्द्रमसि श्रितं तेनामृतत्वस्येशाने माहं पौत्रमघं रुदामिति न हाऽस्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रैतीति नु जातपुत्रस्याथाजातपुत्रस्याह। आप्यायस्व समेतु मे। सन्ते पयांसि समुयन्तु वाजाः। यमादित्या अंशुमाप्याययन्तीति। एतास्तिस्र ऋचो जपित्वा मास्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययिष्ठा योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिराप्यायस्वेति। दैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्त इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्त्तते ॥ ८ ॥

(भाषार्थ)-तदनन्तर हर महीने अमावास्या के दिन पिछले भाग में की सुषुम्ना नामवाली रश्मि में वर्त्तमान शास्त्रप्रसिद्ध चन्द्रमा की उपासना करै। उपासना के 'यत्ते इत्यादि' मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे अमृततत्त्वको वरसाने वाले चन्द्रदेव! मेरी वाणी आपके विषैं ही अर्पित होती है, तुम मेरे सुन्दर हृदयमें निवास करते हो,हे भगवन्! ऐसा करिये, कि-मुझै पुत्रसम्बन्धी दुःख से रोना न पडे। इस मंत्रको पढ़ता हुआ दो नये दूर्वांकुरों के द्वारा अर्घ देय। तदनन्तर पुत्रमान् गृहस्थ यह प्रार्थना करे, कि-चन्द्रदेव! मेरी मृत्यु से पहिले मेरे पुत्रका मरण न हो और पुत्रहीन गृहस्थ यह प्रार्थना करै, कि-हे चन्द्रदेव! तृप्त हूजिये, मेरा दिया हुआ अर्घ आपको प्राप्त हो। आपका क्षीर सकल अन्ननीवी सन्तानों को प्राप्त हो। अग्निस्वरूप पुरुष सकल स्त्रीरूप सोमको अप्यायित करै। इन तीन ऋक्मन्त्रों को पढ़नेके अनन्तर साधारण प्रार्थना करै, कि- हमारे प्राण प्रजा वा पशुओंके द्वारा शत्रुओंके आनन्दको न बढ़ाना। जो हमसे द्वेष करते हैं अथवा हम जिनके साथ द्वेष करते हैं उनके प्राण प्रजा और पशुओंके द्वारा तुम्हारी तृप्ति हो। हम आ-

पकी विचरणक्रियाके अनुगामी होते हैं। अग्निषोमरूप आदित्यकी विचरणक्रियाके अनुगामी होते हैं। ऐसा कहकर दाहिनी बाहुको निकालै॥ ८॥

अथ पौर्णमास्यां पुरस्ताच्चन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता सोमो राजासि विचक्षणः पञ्चमुखोऽसि प्रजापतिर्ब्राह्मणस्त एकं मुखं तेन मुखेन राज्ञोऽत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु। राजा त एकं मुखं तेन मुखेन विशोऽत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु। श्येनस्त एकं मुखं तेन मुखेन पक्षिणोऽत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु। अग्निष्ट एकं मुखं तेन मुखेनेमं लोकमत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु। त्वयि पञ्चमं मुखं तेन मुखेन सर्वाणि भूतान्यत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु। माऽस्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षेष्ठा योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षीयस्वेति स्थितिर्दैवीमावृतमावर्त्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्त्तत इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्त्तते॥ ६॥

(भावार्थ)-तदनन्तर आगे कहेहुए मन्त्रके द्वारा पौर्ण-

मासीके दिन सामने दीखतेहुए चन्द्रमाकी उपासना करै। कहै कि–हे चन्द्रदेव! तुम दीप्तिवाले सोम नामक राजा हो, तुम परमचतुर और पञ्चमुख हो। प्रजापति ब्राह्मण तुम्हारा एक मुख है, उस मुखसे तुम सकल क्षत्रियोंका भक्षण करते हो, उस मुखसे तुम मुझे अन्नका भोक्ता करो। राजा तुम्हारा दूसरा मुख है, इस दूसरे मुखसे तुम सकल वैश्योंका भक्षण करते हो, उस मुखके द्वारा तुम मुझे अन्नका भोक्ता करो। श्येन तुम्हारा तीसरा मुख है, उस मुखसे तुम सकल पक्षियों को भक्षण करते हो, उस मुखसे तुम मुझे अन्नका भोक्ता करो। अग्नि तुम्हारा चौथा मुख है, उस मुखसे तुम इस सकल लोकको भक्षण करते हो, उस मुखके द्वारा तुम मुझे अन्नका भोक्ता करो। इन मुखोंसे अलग तुम्हारा एक पांचवां मुख और है, उस मुखके द्वारा तुम सकल भूतोंका भक्षण करते हो, उस मुखके द्वारा तुम मुझे अन्नका भोक्ता करो। हमारे प्राण प्रजा और पशुओंके द्वारा हमारे बान्धवोंका नाश न करना। जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उसके प्राण, प्रजा और पशुओंके द्वारा हमारे वैरी के बान्धवोंका नाश करो। मैं दैवमंत्रकी आवृत्ति करता हूं,

आदित्यके मंत्रकी आवृत्ति करता हूं। इस मंत्रकी आवृत्ति करताहुआ दक्षिण बाहुका आवर्त्तन करै ॥ ९ ॥

अथ संवश्यन् जायायै हृदयमभिमृशेत् यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ मन्येहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघं रुदमिति न ह्यस्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रैति ॥ १० ॥

(भाषार्थ)-इसके अनन्तर भार्याके साथ बैठकर भार्याके हृदयका स्पर्श करै। जो सुख तेरे सुन्दर हृदयका हितकारी है वह भीतर स्थित प्रजापतिमें स्थित है ऐसा मैं मानता हूं और अपनेको मैं उसका ज्ञान रखनेवाला भी समझता हूं, इस सत्यके द्वारा मैं पुत्रसम्बन्धी पापके लिये रुदन नहीं करूंगा, मेरी सकल पहिली प्रजायें नाशको प्राप्त न हों १०

अथ प्रोष्यायन् पुत्रस्य मूर्धानमभिमृशेत्। अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे आत्मा त्वं पुत्र माऽविथ स जीव शरदः शतम्। असाविति नामास्य गृह्णाति। अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमास्तृतं भव। तेजो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्। असाविति नामास्य गृह्णाति। येन प्रजा-

पतिः प्रजाः पर्यगृह्णादरिष्ट्यै। तेन त्वा परिगृह्णामि। असाविति नामास्य गृह्णाति। अथास्य दक्षिणे कर्णे जपत्यस्मै प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्रश्रेष्ठानि द्रव्याणि धेहीति सव्येमाच्छत्थाः, मा व्यथिष्ठाः। शतं शरद आयुषो जीवापुत्र ते नाम्ना मूर्धानमभिजिघ्रामि। असाविति त्रिर्मूर्धानमवजिघ्रेत्। गवां त्वा हिङ्कारेणाभिहिंकरोमि। इति त्रिर्मूर्धानमभिहिंकुर्यात्॥ ११॥

(भाषार्थ)–तदनन्तर स्थानान्तरमें जा तहांसे लौटने पर पुत्रके मस्तकका स्पर्श करै। उस समय 'अङ्गादङ्गात् इत्यादि' मंत्रको पढै, उसका अर्थ यह है, कि–हे पुत्र! तू मेरे प्रत्येक अङ्गसे निकलाहुआ है और हृदयसे उत्पन्न हुआ है। हे पुत्र! तू मेरा स्वरूप है और मेरी रक्षा करनेवाला है। तू सौ वर्ष पर्यन्त जीवन धारण कर, तेरा नाम अमुक है, तू पत्थरकी समान दृढ हो, तू कुठारकी समान तीक्ष्ण हो, तू फैलेहुए सुवर्णकी समान देदीप्यमान हो, तुझ तेजस्वरूपने पुत्र नाम धारण किया है, तू सौ वर्ष पर्यन्त जीवन धारण कर, तेरा नाम अमुक है। जिस तेजके द्वारा प्रजापतिने अविनाश

(रक्षाके) के लिये प्रजाओंको ग्रहण किया है, उस ही तेज के द्वारा मैं तुझको ग्रहण करता हूं, तेरा नाम अमुक है, मेरी सन्तानका नाश न करना, व्यथित न होना, सौ वर्ष पर्यन्त जीवन धारण कर, हे पुत्र! तेरे नामसे मस्तकको सूंघता हूं, फिर अपना नाम लेकर तीन वार पुत्रके मस्तकको सूंघै। गौके रंभानेके स्वरमें तुझे पुकारता हूं, ऐसा कहकर तीन वार पुत्रके मस्तक पर हिङ्कार शब्दका उच्चारण करै।११।

अथातो दैवः परिमर एतद्वै ब्रह्म दीप्यते। यदग्निर्ज्वलत्यथैतन्म्रियते यन्न ज्वलति तस्यादित्यमेव तेजो गच्छति, वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते। यदादित्यो दृश्यते,अथैतन्म्रियते यन्न दृश्यते तस्य चन्द्रमसमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यच्चान्द्रमा दृश्यते। अथैतन् म्रियते यन्न दृश्यते तस्य विद्युतमेव तेजो गच्छति, वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यद् विद्योतते। अथैतन्म्रियते यन्न विद्योतते तस्य वायुमेव तेजो गच्छति। वायुं प्राणः। ता वा एताः सर्वा देवता वायुमेव प्रविश्य वायौ मृता न मृच्छन्ते तस्मादेव उ पुनरुदीरते। इत्यधिदैवतम्॥१२

(भापार्थ)-अब अपने शत्रुका नाश करनेकी इच्छासे ब्रह्मरूप प्राणको परिमर नाम से कहा है, जब अग्नि प्रज्वलित होता है, उस समय प्रत्यक्ष प्राण उपाधिवाला ब्रह्म प्रकाशित होता है। जिस समय यह अग्नि प्रज्वलित नहीं होता है उस समय उसका तेज आदित्यमें चला जाता है, प्राण वायुमें चलाजाता है। जिस समय आदित्य प्रकाशित होता है उस समय यह ब्रह्म प्रदीप्त होता है जिस समय आदित्य अप्रकाशित होता है उस सयय यह ब्रह्म प्रदीप्त नहीं होता है, उस समय इस आदित्यका तेज चन्द्रमामें चलाजाता है, प्राण वायुमें चलाजाता है। जिस समय चन्द्रमा प्रकाशित होता है उस समय यह ब्रह्म प्रदीप्त होता है जिस समय चन्द्रमा अप्रकाशित होता है, उस समय यह ब्रह्म भी प्रदीप्त नहीं होता है, उस समय चन्द्रमा का तेज बिजली में प्रवेश करता है. जिस समय बिजली चमकती है उस समय ब्रह्म प्रदीप्त होता है, बिजलीका चमकना अन्तर्धान होने पर ब्रह्म भी प्रकाशित नहीं होता है, उस समय बिजलीका तेज वायुमें प्रवेश करजाता है, प्राण वायुमें प्रवेश करजाता है। वायुमें प्रवेशके अनन्तर ये सब देवता वायुमें

ही मिलजाते हैं, विनष्ट नहीं होते हैं, ये फिर वायुमें से ही प्रकाशित होजाते हैं । इस प्रकार अधिदैवका वर्णन कियागया ॥ १२ ॥

अथाऽध्यात्मकम् । एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यद्वाचा वदत्यथैतन् म्रियते यन्न वदति तस्य चक्षुरेव तेजो गच्छति, प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते तच्चक्षुषा पश्यत्यथैतन्म्रियते यन्न पश्यति तस्य श्रोत्रमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यच्छ्रोत्रेण शृणोति, अथैतन्म्रियते यन्न शृणोति तस्य मन एव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद् वै ब्रह्म दीप्यते यन्मनसा ध्यायत्यथैतन्म्रियते यन्न ध्यायति तस्य प्राणमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राणस्ता वा एताः सर्वा देवताः प्राणमेव प्रविश्य प्राणे मृता न मृच्छन्ते तस्मादेव उ पुनरुदीरते तद् यदि वा एवं विद्वांस उभौपर्वतावभिप्रवर्त्तेयातां तुस्तूर्षमाणौ दक्षिणश्चो-त्तरश्च न हैवैनं स्तृण्वीयातामथ य एनं द्विषन्ति यांश्च स्वयं द्वेष्टि त एवं सर्वे परितो म्रियन्ते ॥१३॥

(भाषार्थ)-अब अध्यात्म कहते हैं, कि-वाणी से बोलते समय ब्रह्म ही प्रदीप्त होता है,जब वाणी से नहीं बोलता है, उस समय ब्रह्मका भी प्रकाश नहीं होता है,वाक् इन्द्रियका तेज उस समय चक्षुमें प्रवेश करजाता है। प्राण प्राणमें ही प्रवेश करता है। नेत्र से जो देखाजाता है वह भी ब्रह्म ही प्रदीप्त होता है, जब देखनेका काम नहीं होता है, उससमय ब्रह्मका प्रकाश नहीं होता है, उस समय चक्षु का तेज श्रोत्र इन्द्रिय में प्रवेश करजाता है, प्राण प्राण में ही प्रवेश करता है। श्रवण के समय ब्रह्म ही प्रदीप्त होता है, जब श्रवणका काम नहीं होता है उस समय ब्रह्मका भी प्रकाश नहीं होता है, उस समय श्रवणेन्द्रिय का तेज मनमें प्रवेश करजाता है, प्राण प्राण में प्रवेश करता है। ध्यान के समय ब्रह्म ही प्रदीप्त होता है, जब ध्यान का काम नहीं होता है उससमय ब्रह्मका भी प्रकाश नहीं होता है, उससमय मन का तेज प्राणमें प्रवेश करजाता है, प्राण प्राणमें प्रवेश करजाता है। ये सब देवता प्राण में प्रवेश करने के अनन्तर प्राणमें ही मिलजाते हैं, विनष्ट नहीं होते हैं,ये प्राण में से भी फिर उठ आते हैं। इस प्रकार देवपरिमर का ज्ञान होजाने पर ऐसे

ज्ञानवाला पुरुष बडी सामर्थ्य वाला होजाता है उस को कोई नहीं दबा सकता है, ऐसे पुरुष से जो द्वेष करता है वा यह पुरुष जिनसे द्वेष करता है, वे सब नष्ट होजाते हैं।

अथातो निःश्रेयसादानम्। सर्वा ह वै देवता अहं श्रेयसे विवदमाना अस्मात् शरीरात् उच्चक्रमुस्तद्दारुभूतं शिश्ये। अथैतद् वाक् प्रविवेश तद्वाचा वदच्छिश्य एव अथैनच्चक्षुः प्रविवेश तद्वाचा वदच्चक्षुषा पश्यच्छिश्य एवाथैनच्छ्रोत्रं प्रविवेश वदच्चक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शृण्वच्छिश्य एवाथैनन् मनः प्रविवेश। तद्वाचा वदच्चक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शृण्वन्मनसा ध्यायच्छिश्य एवाथैनत्प्राणः प्रविवेश तत्तत एव समुत्तस्थौ ते देवाः प्राणे निःश्रेयसं विदित्वा प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंभूय सहैतैः सर्वैरस्माल्लोकादुच्चक्रमुः। ते वायुप्रतिष्टा आकाशात्मानः स्वरीयुस्तथो एवैवं विद्वान् सर्वेषां भूतानां प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंभूय सहैतैः सर्वैरस्मात् शरीरादुत्क्रामति स वायुप्रतिष्ठ आकाशात्मा

स्वरेति स तद्भवति । यत्रैते देवास्तत्प्राप्य तदमृता भवति यदमृता देवाः ॥ १४ ॥

(भापार्थ)–तदनन्तर निष्काम होजाने पर प्राणके मोक्षदायकपनेका ज्ञान होता है। जब वाक् आदि सकल देवता अपनी२ प्रधानता के लिये विवादपरायण होकर इस शरीर में से निकल गये, उस समय यह स्थूल शरीर काठकी समान सोया रहगया, तदनन्तर पहिले वाक् इन्द्रिय ने फिर इस शरीर में प्रवेश किया, परन्तु शरीर वाक् इन्द्रिय के प्रवेश से वाक्शक्ति पाकर भी तैसा ही सोया रहा। तदनन्तर चक्षु ने प्रवेश किया, परन्तु शरीर वाणी और चक्षुको पाकर भी पहिले की समान ही पडारहा। तदनन्तर श्रवण ने प्रवेश किया, शरीर तब भी पहिले की समान ही पडा रहा। तदनन्तर मन ने प्रवेश किया, शरीर तब भी पहिले की समान हीं पडा रहा, तदनन्तर प्राण ने प्रवेश किया, तब तो शरीर उस ही समय खडा होगया। यह देख कर वाक् आदि सब देवता प्राण को ही प्रधान जानकर उसके साथ मिले और इस लोक से चले गये। प्राणमें स्थित आकाश की समान सर्वगत वाक् आदि सकल देवता इस लोक से

त्क्रमण के अनन्तर अग्नि आदि स्वरूप को प्राप्त होगये। जो पुरुष इस प्रकार प्राण की प्रधानता को जानता है वह सकल भूतों के प्राण को ही प्रज्ञात्मा जानकर और उसके साथ मिलकर वाक् आदि देवताओं के साथ इस लोक से जाते हुए प्राणमें प्रतिष्ठित और आकाशकी समान सर्वगत होजाता है तथा अन्त में स्वर्ग को प्राप्त होता है, वह प्राण-स्वरूप होजाता है। जिस में सब देवताओं की स्थिति है ऐसे प्राणस्वरूप को प्राप्त होकर तद्रूप अमर होजाता है। वाक् आदि सकल देवता भी प्राणकी समान अमर हैं १४

अथातः पितापुत्रीयं सम्प्रदानमिति चाचक्षते पिता पुत्रं प्रेष्यन्नाह्वयति नवैस्तृणैरगारं संस्तीर्याग्निमुपसमाधायोदकुम्भं सपात्रमुपनिधायाहतेन वाससा संप्रच्छन्नः स्वयं श्येत एत्य। पुत्र उपरिष्टादभिनिपद्यते। इंद्रियैःस्वेंद्रियाणि संस्पृश्यापि वास्याभिमुख्त एवासीत। अथास्मै संप्रयच्छति वाचं मे त्वयि दधानीति पिता। वाचं ते मयि दध इति पुत्रः। प्राणं मे त्वयि दधानीति पिता। प्राणं ते

मयि दध इति पुत्रः । चक्षुर्मे त्वयि दधानीति पिता । चक्षुष्टे मयि दध इति पुत्रः । श्रोत्रं मे त्वयि दधानीति पिता । श्रोत्रन्ते मयि दध इति पुत्रः । अन्नरसान्मे त्वयि दधानीति पिता । अन्नरसांस्ते मयि दध इति पुत्रः । कर्माणि मे त्वयि दधानीति पिता कर्माणि ते मयि दध इति पुत्रः । सुखदुःखे मे त्वयि दधानीति पिता॥ सुखदुःखे ते मयि दध इति पुत्रः आनन्दं रतिं प्रजातिं मे त्वयि दधानीति पिता । आनन्दं रतिं प्रजातिं ते मयि दध इति पुत्रः । इत्या मे त्वयि दधानीति पिता । इत्यास्ते मयि दध इतिपुत्रः धियो विज्ञातव्यं कामान्मे त्वयि दधानीति पिता धियो विज्ञातव्यं कामांस्ते मयि दध इति पुत्रः । अथ दक्षिणावृत् प्राङुपनिष्क्रामति । तं पिता अनुमन्त्रयते यशो ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यं कीर्त्तिस्त्वा जुषतामित्यथेतरः । सव्यमंसमन्ववेक्षते । पाणिनान्तर्धाय वसनान्तेन वा प्रच्छाद्य स्वर्गाल्लोकात्कामानाप्नुहीति स यद्यगदः स्यात्पुत्रस्यैश्वर्ये पिता वसेत् परे वा व्रजेद्यद्यु वै प्रेयाद्यदेवैनं समापयति तथा समापयितव्यो भवति तथा समापयितव्यो भवति ।

(भाषार्थ)— तदनन्तर मरण को अवश्यम्भावी जानकर पिताके द्वारा पुत्र को दिये जाने वाले पदार्थ को इस प्रकार कहते हैं पिता किसी कारणसे अपने मरणको निश्चित जानकर पुत्रका आह्वान करै। नये तृणोंसे घरको छाकर अग्नि स्थापन, पूर्णपात्रसहित जलभरे कलशका सथापन और उसके ऊपर वस्त्र आच्छादन करके स्वयं सफेद फूलोंकी माला और वस्त्र पहरनेके अनन्तर आयेहुए पुत्रसे मिलै, अपनी इन्द्रियोंके द्वारा पुत्रकी इन्द्रियोंका स्पर्श करै, फिर पुत्रको सन्मुख बैठालै, फिर उसको अपनी वाक् आदि अर्पण करै। अपनी वाक् मैं तुझमें धारण करता हूं। पुत्र कहै कि–मैं तेरी वाक् को धारण करता हूं। पिता—मैं अपना प्राण तुझमें धारण करता हूं। पुत्र–तेरे प्राण को मैं अपनेमें धारण करता हूं। पिता—अपने चक्षुको मैं तुझमें धारण करता हूं। पुत्र--आपके चक्षुको मैं अपनेमें धारण करता हूं। पिता--अपने श्रवणको मैं तुझमें स्थापन करता हूं। पुत्र--तुम्हारे श्रवणको मैं अपनेमें धारण करता हूं। पिता--अपने अन्नरसोंको मैं तुझमें स्थापन करता हूं। पुत्र--तुम्हारे अन्नरसोंको मैं अपनेमें धारण करता हूं। पिता-अपने सकल कर्मोंको तुझमें स्थापन करता हूं। पुत्र—आपके कर्मों

को मैं अपनेमें धारण करता हूं। पिता--अपने सुख दुःखको तुझमें स्थापन करता हूं। पुत्र--आपके सुख दुःखको मैं अपने में धारण करता हूं। पिता--अपने आनन्द रति और प्रजो-त्पत्ति को मैं तुझमें स्थापन करता हूं। पुत्र--आपके आनन्द, रति और सन्तानोत्पत्तिको मैं अपनेमें धारण करता हूं। पिता--अपनी गति को तुझमें स्थापन करता हूं। पुत्र--आपकी गति को मैं अपने में धारण करता हूं। पिता--अपने ज्ञान ज्ञातव्य और सकल कामों को तुझमें स्थापन करता हूं। पुत्र--आपके ज्ञान ज्ञातव्य और कामोंको मैं अपनेमें धारण करता हूं। इसके अनन्तर पुत्र पिताकी प्रद-क्षिणा करकै उनके पाससे पूर्व दिशाको चलाजाय। उस समय पिता पुत्रको पुकारकर कहै, कि--हे पुत्र! तुझको लोककी और शास्त्रकी कीर्त्ति तथा ब्रह्मतेज प्राप्त हो। तद-नन्तर पुत्र दाहिनी भुजाकी बगलको देखै और हाथसे या वस्त्रके छोरसे ढककर पितासे कहै कि--तुम स्वर्गलोकसे इच्छित पदार्थ पाओ। पिता यदि नीरोग हो तो पुत्रकी सम्पत्तिका भोग या संन्यास धारण करै। और पिताकी मृत्यु होजाने पर पुत्र पिताके दियेहुए सर्वस्वको पावेगा ॥ १५ ॥

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय ।

ॐ प्रतर्दनो ह दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं धाम उप-जगाम युद्धेन च पौरुषेण च । तं हेन्द्र उवाच । प्रत-र्दन वरं ते ददानीति । स होवाच प्रतर्दनः । त्वमेव मे वृणीष्व यं त्वं मनुष्याय हिततमं मन्यस इति । तं हेन्द्र उवाच । न वै वरोऽवरस्मै वृणीते, त्वमेव वृणीष्व, इत्येवमवरो वै किल म इति होवाच प्रत-र्दनोऽथो खल्विन्द्रः सत्यादेव नेयाय । सत्यं हीन्द्रः स होवाच मामेव विजानीहि । एतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये, यन्मां विजानीयात् । त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनमरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्राय-च्छं बह्वीः सन्धी अतिक्रम्य दिवि प्रल्हादीयानतृ-णमहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालखञ्जान् तस्य मे तत्र न लोम च मा मीयते । स यो मां वि-जानीयान्नास्य केन च कर्मणा लोको मीयते । न मातृवधेन न पितृवधेन न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया नास्य पापं च न चकृषो मुखान्नीलं वेत्तीति ॥ १ ॥

(भाषार्थ)—काशीराज दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन युद्ध और पुरुषार्थके द्वारा इन्द्रके प्यारे धाम स्वर्गमें गया। इन्द्रने उस से कहा,कि–हे प्रतर्दन! मैं तुझे वर देता हूं।प्रतर्दनने कहा कि–आप मनुष्य के लिये जिसको परमहितकारी समझते हों वह वर मुझसे मांगलीजिये। यह सुनकर इन्द्रने कहा, कि-मैं कभी भी दूसरे से वर प्रार्थना नहीं करता हूं, इस-लिये तू स्वयं ही मुझसे वर मांगले। इन्द्रके ऐसा कहनेपर प्रतर्दन ने फिर कहा,कि–यदि तुम वर नहीं स्वीकार करोगे तो मैंने जो 'तुम्हें वर दूंगा' ऐसी प्रतिज्ञा की है, वह मेरी प्रतिज्ञा निष्फल होजायगी, इसलिये तुमको उचित है, कि—मुझसे वर मांगलो। तुम किसी दूसरेके निमित्त वर न मांगकर स्वयं ही मुझसे वर मांगसकते हो। यह बात सुनकर इन्द्र सत्यसे विचलित नहीं हुए : सत्य ही इन्द्र का स्वरूप है। सत्यनिष्ठ इन्द्रने कहा, कि-मुझको जानलो, यह ही मैं मनुष्योंके लिये हितकारी समझता हूं। मुझको जान-लेनेपर ही मनुष्य का हित होता है। मैंने तीन शिरवाले त्वष्टा के पुत्र विश्वरूपको मारकर गिरादिया है। मैंने वेदके पढ़नेसे विमुख हुए यतियों को जङ्गलमें कुत्तोंके मुखमें डाला

है। बहुत सी संधियों को लांघकर मैंने स्वर्ग में प्रल्हादपक्षके असुरोंको मार गिराया है। मैंने अन्तरिक्ष में पौलोम नामवाले असुरोंके मार गिराया है । और पृथ्वी पर कालखंज नामवाले असुरों को मारगिराया है इसप्रकार मैंने बड़े २ क्रूरकर्म किये हैं तो भी मेरा एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। जो मुझे इसप्रकार जानता है उसको कोई नहीं सतासकता उसको मातृहत्या पितृहत्या और भ्रूणहत्या नहीं छूसकतीं, वह पापकर्म करना चाहै तो भी उसके मुखका रंग नहीं बदलता है ॥ १ ॥

स होवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्स्व। आयुः प्राणः प्राणो वा आयुः प्राण एवामृतम्। यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः। प्राणेन ह्येवामुष्मिंल्लोके ऽमृतत्वमाप्नोति। प्रज्ञया सत्यं संकल्पम्। स यो मामायुरमृतमित्युपास्ते सर्वमायुरस्मिंल्लोक एति। आप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं स्वर्गे लोके। तद्धैक आहुरेकभूयं वै प्राणा गच्छन्तीति न हि कश्चन शक्नुयात् सकृ-

ह्यचो नाम प्रज्ञापयितुं चक्षुषा रूपं श्रोत्रेण शब्दं मनसा ध्यातुमित्येकभूयं वै प्राणाः। एकैकमेतानि सर्वाण्येव प्रज्ञापयन्ति। वाचं वदन्तीं सर्वे प्राणा अनुवदन्ति। चक्षुः पश्यत्सर्वे प्राणा अनुपश्यन्ति श्रोत्रं शृण्वत्सर्वे प्राणा अनुशृण्वन्ति। मनो ध्यायत्सर्वे प्राणा अनुध्यायन्ति। प्राणं प्राणन्तं सर्वे प्राणा अनुप्राणन्ति। एवमु हैतदिति हेन्द्र उवाच। अस्तित्त्वेव प्राणानां निःश्रेयसमिति॥ २॥

(भाषार्थ)-इन्द्रने कहा, कि-मैं प्रज्ञात्मा प्राण हूं। मुझको आयु और अमृत जानकर उपासना कर। आयु ही प्राण है, प्राण ही आयु है, प्राण ही अमृत है। जबतक इस शरीर में प्राण रहता है तबतक आयु है। प्राण ही परलोकमें अमृतत्वको पाता है। प्रज्ञा के द्वारा सत्य सङ्कल्प की प्राप्ति होती है। जो पुरुष मुझे आयु और अमृत जानकर उपासना करता है वह इस लोकमें सौ वर्ष की आयु पाता है, यही बात किन्हीं२ ने कही है। प्राण इन्द्रियोंके साथ एकीभावको प्राप्त होता है। कोई भी एकसाथ वाणीके द्वारा बोलनेको, चक्षुके द्वारा देखनेको, श्रोत्रके द्वारा शब्द सुनने

को, और मनके द्वारा चिन्तवन करनेको समर्थ नहीं होता है, इसलिये प्राण ही एकीभावको प्राप्त होता है। एक २ करके ये सब काम सिद्ध होजाते हैं। वाक् इन्द्रियकी प्रवृत्तिके अनन्तर अन्य इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होती है। चक्षुकी प्रवृत्तिके अनन्तर अन्य इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है। श्रवणेन्द्रियकी प्रवृत्तिके अनन्तर अन्य इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होती है। मनकी प्रवृत्ति के अनन्तर अन्य इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होती है, प्राणकी प्रवृत्तिके अनन्तर और इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है। यह बात इसप्रकार ही इन्द्रने कही, इसकारण सबसे अधिक प्रधानता प्राणकी ही मालूम होती है ॥ २ ॥

जीवति वागपेतो मूकान् हि पश्यामो जीवति चक्षुरपेतोऽन्धान् हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान् हि पश्यामो जीवति मनोऽपेतो बालान् हि पश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवति ऊरुच्छिन्न इति एवं हि पश्याम इति। अथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्योत्थापयति। तस्मादेतदेवोक्थमुपासीत। यो प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः। सह ह्येतावस्मिन् शरीरे वसतः

सहोत्क्रामतस्तस्यैषैव दृष्टिः। एतद् विज्ञानम्। यत्रै-
तत्पुरुषः सुप्तः स्वप्नं न कञ्चन पश्यत्यथास्मिन्
प्राण एवैकधा भवति। तदैनं वाक् सर्वैर्नामभिः
सहाप्येति। चक्षुः सर्वैः रूपैः सहाप्येति। श्रोत्रं
सर्वैः शब्दैः सहाप्येति। मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति।
स यदा प्रतिबुध्यते यथाऽग्नेर्ज्वलतः सर्वा दिशो
विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन्नेमेवैतस्मादात्मनः प्राणाः
यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो
लोकाः। तस्यैषैव सिद्धिः। एतद् विज्ञानम्। यत्रै-
तत्पुरुष आर्त्तो मरिष्यन्नाबल्यं न्येत्य संमोहं न्येति
तदाहुः, उदक्रमीच्चित्तम्। न शृणोति न पश्यति
न वाचा वदति न ध्यायति। अथास्मिन् प्राण एवै-
कधा भवति। तदैनं वाक् सर्वैर्नामभिः। सहाप्येति।
चक्षुः सर्वैः रूपैः सहाप्येति। श्रोत्रं सर्वैं शब्दैः
सहाप्येति। मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति। यदा प्रति-
बुध्यते यथाऽग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन्ने-
वमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते
प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः॥ ३॥

(भावार्थ)-वाक्शक्तिरहित जीवोंको भी जीवित देखते हैं, सकल गूंगे इसका दृष्टान्त हैं। देखने की शक्तिरहित पुरुषों को भी जीवित देखते हैं, सब अन्धे इसका दृष्टान्त हैं। सुननेकी शक्तिसे रहित पुरुषोंको भी जीवित देखते हैं, सब बहरे इसका दृष्टान्त हैं। चिन्तवनकी शक्तिरहित पुरुषोंको भी जीवित देखते हैं, सकल बालक इसका दृष्टान्त हैं। ऐसे ही हाथकटे जंघाकटे आदि सकल पुरुषोंको भी जीवित देखते हैं। प्राणरूपी प्रज्ञ आत्मा ही इस शरीरको ग्रहण करके इसको चेष्टावाला कररहा है। इसलिये उक्थ नामवाले प्राणरूपी प्रज्ञ आत्मा की ही उपासना करनी चाहिये। जो प्राण है वही प्रज्ञा है, प्रज्ञा ही प्राण है। प्रज्ञा और प्राण संमिलितरूपसे इस शरीरमें वसते हैं। शरीरमें से निकलने के समय भी यह संमिलितरूपसे ही निकलते हैं। प्राणोपाधिक प्रज्ञात्माका यही दर्शन है, यही विज्ञान है। यह विज्ञान जिस अवस्था में सकल विशेषबोधसे शून्य होता है, उस अवस्थामें सोयाहुआ पुरुष किसी स्वप्नको नहीं देखता है, उस समय इस प्राणमें ही एकीभूत होता है। उस समय वाक् इन्द्रिय सकल नामोंके साथ, चक्षु इन्द्रिय सकल रूपों

के साथ, श्रोत्र इन्द्रिय सकल शब्दों के साथ, और मन सकल चिन्ताओं के साथ इस प्राणमें ही एकीभूत होता है। जिस समय पुरुष जागता है, उस समय अग्निसे सकल दिशाओंमेंको फैलनेवालीं चिनगारियोंके समान इस आत्मा से वाक् आदि सकल इन्द्रयें निकलती हैं। प्राण से अग्नि आदि देवता निकलते हैं। सकल देवताओंसे सकल विषय निकलते हैं. आत्माकी यह प्राणरूपसे प्रसिद्धि है, यह ही विज्ञान है। जिस समय पुरुष पीड़ित होकर मृत्युके मुखमें जानेके लिये आवल्य (वलहीनता) और मोहको प्राप्त होता है उस उसके समीपके सकल पुरुष कहते हैं, कि-इसका मन उत्क्रान्त होगया है, यह पुरुष अव श्रवण, दर्शन वातचीत और चिन्तवन नहीं करता है। इसकी सव इन्द्रियें प्राणमें एकीभूत होगई हैं इस वाक् इन्द्रिय नामके सहित, दर्शनेंद्रिय रूपके साथ, श्रोत्र इन्द्रिय शब्दके साथ और मन चिन्तवनके साथ प्राणमें एकीभूत होगया है। जिस समय जीव सचेत होता है. उस समय जैसे जलती हुई आगमेंसे चिनगारियें उठती हैं तैसे ही इस जीवात्मामेंसे सकल इन्द्रियें निकलकर अपने२ विषयमें चेष्टा करने लगती हैं, प्राणमेंसे देवता और देवताओं मेंसे सकल विषय उठते हैं ॥ ३ ॥

स यदा अस्मात् शरीरादुत्क्रामति सहैवैतैः सर्वैरुत्क्रामति। वागस्मात् सर्वाणि नामानि अभिविसृजते। वाचा सर्वाणि नामानि आप्नोति। प्राणोऽस्मात्सर्वान् गन्धान् विसृजते। प्राणेन सर्वान् गन्धानाप्नोति। चक्षुरस्मात् सर्वाणि रूपाणि अभिविसृजते चक्षुषा सर्वाणि रूपाण्याप्नोति। श्रोत्रमस्मात्सर्वान् शब्दानभिविसृजते श्रोत्रेण सर्वान् शब्दानाप्नोति। मनोऽस्मात्सर्वाणि ध्यानानि अभिविसृजते मनसा सर्वाणि ध्यानान्याप्नोति। सैषा प्राणे सर्वाप्तिः। यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः। सह ह्येतावस्मिन् शरीरे वसतः सहोत्क्रामतः। अथ खलु यथाऽस्यै प्रज्ञायै सर्वाणि भूतानि एकं भवन्ति तद्व्याख्यास्यामः॥ ४॥

(भावार्थ)--जीव जिस समय देहमें से उत्क्रमण करता है उस समय सब इन्द्रियोंके साथ ही निकल कर जाता है। वाक् इंद्रिय सकल नामोंके साथ इस शरीरको त्यागजाती है वाक् इन्द्रियकी सहायतासे ही नामकी प्राप्ति होती है। घ्राणेन्द्रिय सकल गन्धोंके सहित इस शरीर को त्यागजाती है घ्राणकी सहायतासे ही गन्धका ग्रहण होता है। चक्षु

सकल रूपोंके सहित इस शरीरको त्यागजाता है, चक्षुकी सहायतासे ही रूपका ग्रहण होता है । श्रोत्र सकल शब्दों के साथ इस शरीरको त्यागजाता है, श्रोत्रकी सहायतासे ही शब्दोंका ग्रहण होता है । मन सकल चिन्ताओंके साथ इस शरीरको त्यागजाता है, मनकी सहायतासे ही चिन्ता-ओंका कार्य होता है । परन्तु प्राणमें इन सबकी प्राप्ति होती है । जो प्राण है वही प्रज्ञा है, जो प्रज्ञा है वही प्राण है । प्रज्ञा और प्राण मिलेहुए हीं इस शरीरमें निवास करते हैं और मिलेहुए ही इस शरीरको छोडजाते हैं । सकल भूत जिस प्रकार इस प्रज्ञामें ही एकीभूत होजाते हैं, अब आगे उसका ही वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

वागेवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्यै नाम । परस्ता-त्प्रतिविहिता भूतमात्रा । प्राण एवास्या एकमङ्गमु-दूढं तस्य गन्धः, परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा । चक्षु-रेवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्य रूपं परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा । श्रोत्रमेवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्य शब्दः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा । जिह्वैवास्या एकम-ङ्गमुदूढं तस्या अन्नरसः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा

हस्तावेवास्या एकमङ्गमुदूढं तयोः कर्म परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा । शरीरमेवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्य सुखदुःखे परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा । उपस्थ एवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्यानन्दो रतिः प्रजातिः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा । पादावेवास्या एकमङ्गमुदूढं तयोरित्याः, परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा । प्रज्ञैवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्यै धियो विज्ञातव्यं कामाः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा ॥ ५ ॥

(भाषार्थ)-वाक् इन्द्रियने इस प्रज्ञाके एक भागको अपने वशमें किया है, तदनन्तर इस वाक् इन्द्रियके नामकी और तदनन्तर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है । घ्राणेन्द्रियने इस प्रज्ञाके एक भागको वशमें किया हैं, तदनन्तर इस घ्राणेन्द्रियके गन्धकी और तदनन्तर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है। चक्षुने इस प्रज्ञाके एक भागको वशमें किया है, तदनन्तर इस चक्षुके रूपकी और तदनन्तर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है । श्रोत्रने इस प्रज्ञाके एक भागको वशमें किया है, तदनन्तर इस श्रोत्रके शब्दकी और तदनन्तर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है । रसनाने इस प्रज्ञाके एक भागको वशमें किया है,

तदनन्तर इस रसनाके अन्नरसकी और तदनन्तर भूतमात्रा की उत्पत्ति हुई है । कर्मेन्द्रिय दोनों हाथोंने इस प्रज्ञाके एक अङ्गका वशमें किया है, तदनन्तर दोनों हाथोंके कर्मकी और तदनन्तर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है। शरीरने इस प्रज्ञाके एक अंशको अपने अधीन किया है, तदनन्तर इस शरीरके सुख दुःखकी और तदनन्तर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है। उपस्थने इसके एक अंशको अधीन किया है, तदनन्तर उसमें आनन्द रति सन्तानोत्पादनकी और तदनन्तर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है। दोनों चरणोंने उसके एक अंश को अपने अधीन किया है, तदनन्तर उसमें गतिकी और फिर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है। प्रज्ञाने एक अंशको अपने वशमें किया है, तदनन्तर उसमें बुद्धि ज्ञेय और सकल कामोंका और फिर भूतमात्राकी उत्पत्ति हुई है ॥ ५ ॥

प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्वाणि नामान्याप्नोति। प्रज्ञया प्राणं समारुह्य प्राणेन सर्वान् गन्धानाप्नोति। प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्वाणि रूपाणि आप्नोति। प्रज्ञया श्रोत्रं समारुह्य श्रोत्रेण सर्वान् शब्दानाप्नोति। प्रज्ञया जिह्वां

समारुह्य जिह्वया सर्वानन्नरसानाप्नोति । प्रज्ञया हस्तौ समारुह्य हस्ताभ्यां सर्वाणि कर्माण्याप्नोति। प्रज्ञया शरीरं समारुह्य शरीरेण सुखदुःखे आप्नोति प्रज्ञयोपस्थं समारुह्य उपस्थेनानन्दं रतिं प्रजापतिमाप्नोति । प्रज्ञया पादौ समारुह्य पादाभ्यां सर्वा इत्या आप्नोति । प्रज्ञयैव धियं समारुह्य प्रज्ञयैव धियो विज्ञातव्यं कामानाप्नोति॥ ६ ॥

(भाषार्थ)-प्रज्ञाके द्वारा वाणीका आश्रय लेकर वाणीके द्वारा सकल नामोंको प्राप्त होता है । प्रज्ञाके द्वारा प्राणका आश्रय लेकर प्राणके द्वारा सकल गन्धोंको पाता है । प्रज्ञाके द्वारा चक्षुका आश्रय लेकर चक्षुके द्वारा सकल रूपों को पाता है । प्रज्ञाके द्वारा श्रोत्रका आश्रय लेकर उसके द्वारा सकल शब्दोंको पाता है। प्रज्ञाके द्वारा रसनाका आश्रय लेकर रसनासे सब अन्नरसोंको पाता है प्रज्ञाके द्वारा दोनों हाथोंका आश्रय लेकर दोनों हाथोंके द्वारा सब कर्मोंको पाता है । प्रज्ञाके द्वारा शरीर पर अधिकार करके शरीरसे सुख दुःख पाता है। प्रज्ञाके द्वारा उपस्थ पर अधिकार करके उपस्थसे आनन्द रति और सन्तानो-

त्पत्तिको पाता है। प्रज्ञाके द्वारा दोनों चरणोंका आश्रय लेकर चरणोंसे सकल गतियोंको पाता है। प्रज्ञाके द्वारा बुद्धि पर अधिकार करके बुद्धिसे सकल ज्ञान, ज्ञेय और कामों को पाता है ॥ ६ ॥

न हि प्रज्ञापेता वाङ्नाम किञ्चन प्रज्ञापयेत्। अन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतन्नाम प्राज्ञासिषमिति। न हि प्रज्ञापेतः प्राणो गन्धं कञ्चन प्रज्ञापयेत् अन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह। नाहमेतं गन्धं प्राज्ञासिषमिति। नहि प्रज्ञापेतं चक्षुः रूपं किञ्चन प्रज्ञापयेत्, अन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह, नाहमेतं रूपं प्राज्ञासिषमिति। नहि प्रज्ञापेतं श्रोत्रं शब्दं कञ्चन प्रज्ञापयेत्, अन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह, नाहमेतं शब्दं प्राज्ञासिषमिति। नहि प्रज्ञापेता जिह्वाऽन्नरसं कञ्चन प्रज्ञापयेत्, अन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह, नाहमेतमन्नरसं प्राज्ञासिषमिति। नहि प्रज्ञापेतौ हस्तौ कर्म किञ्चन प्रज्ञापयेतामन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह, नाहमेतं कर्म प्राज्ञासिषमिति। नहि प्रज्ञापेतं शरीरं सुखं दुःखं किञ्चन प्रज्ञापयेत्। अन्यत्र मे मनोऽभूदि-

त्याह, नाहमेतं सुखं दुःखं प्राज्ञासिषमिति । नहि प्रज्ञापेत उपस्थ आनन्दं रतिं प्रजातिं काञ्चन प्रज्ञापयेत्, अन्यत्र मे मनोभूदित्याह, नाहमेतमानन्दं न रतिं न प्रजातिं प्राज्ञासिषमिति । नहि प्रज्ञापेतौ पादावित्यां काञ्चन प्रज्ञापयेतामन्यत्र मे मनोभूदित्याह, नाहमेतामित्यां प्राज्ञासिषमिति । नहि प्रज्ञापेता धीः काचन सिद्ध्येन्न प्रज्ञातव्यं प्रज्ञायेत ॥७॥

(भाषार्थ)-प्रज्ञाहीन वाक् इन्द्रिय कुछ भी ज्ञापित नहीं करती और कहता है, कि- मेरा मन दूसरी ओर था, इस लिये मैंने इस नामको नहीं जाना । प्रज्ञाशून्य घ्राण किसी गन्धको ज्ञापित नहीं करती, कहता है, कि मेरा ध्यान दूसरी ओर था, इसकारण मैंने इस गन्धको नहीं जाना । प्रज्ञाशून्य चक्षु किसी रूपको नहीं जानता है, कहता है, कि-मेरा मन दूसरी ओर था, इसकारण मैंने इस रूपको नहीं जाना । प्रज्ञारहित श्रोत्र किसी शब्दको नहीं ज्ञापित करता है. कहता है, कि-मेरा मन दूसरी ओरको था, इसकारण मैंने इस शब्दको नहीं सुना । प्रज्ञारहित जिह्वा अन्नके किसी रसको नहीं बताती, कहता है, कि-मेरा मन और विषयमें था, इस

ण मैं इस अन्नरसको नहीं जानसका। प्रज्ञारहित दोनों हाथ किसी कर्मको नहीं जताते, कहता है, कि—मेरा मन और विषयमें था, इसकारण मैं इस कामको नहीं जानसका प्रज्ञारहित शरीर किसी दुःख वा सुखको नहीं जताता है, पुरुष कहता है कि—मेरा मन अन्यत्र था, इसकारण मैं इस सुख दुःखको नहीं जानसका। प्रज्ञारहित उपस्थ किसी आनन्द रति वा सन्तानोत्पत्तिको नहीं जताता है, पुरुष कहता है, कि—मेरा मन अन्यत्र था, इसकारण मैं इस आनन्द रति वा प्रजातिको नहीं जानसका। प्रज्ञारहित चरण किसी गति को नहीं जताते, पुरुष कहता है, कि—मेरा मन अन्यत्र था, इसकारण मैं गतिको नहीं जानसका। प्रज्ञारहित बुद्धि भी सिद्ध नहीं होती है। जाननेयोग्य विषय भी जाननेमें नहीं आता है॥ ७॥

न वाचं विजिज्ञासीत, वक्तारं विद्यात्। न गन्धं विजिज्ञासीत, घ्रातारं विद्यात्। न रूपं विजिज्ञासीत, रूपविद्यं विद्यात्। न शब्दं विजिज्ञासीत, श्रोतारं विद्यात्। नान्नरसं विजिज्ञासीत, अन्नरसस्य विज्ञातारं विद्यात्। न कर्म विजिज्ञासीत कर्तारं

विद्यात् । न सुखदुःखे विजिज्ञासीत सुखदुःखयो-र्विज्ञातारं विद्यात् । नानन्दं न रतिं न प्रजातिं विजिज्ञासीत आनन्दस्य रतेः प्रजातेर्विज्ञातारं विद्यात् नेत्यां विजिज्ञासीत एतारं विद्यात् । न मनो विजिज्ञासीत मन्तारं विद्यात् । ता वा एता दशैव भूतमात्रा अधिप्रज्ञम् । दश प्रज्ञामात्रा अधिभूतम् । यद्धि भूतमात्रा न स्युर्न प्रज्ञामात्राः स्युर्यद्वा प्रज्ञामात्रा न स्युर्न भूतमात्राः स्युः । न ह्यन्यतरतो रूपं किञ्चन सिद्ध्येत् । नो एतन्नाना । तद्यथा रथस्यारेषु नेमिरर्पिता नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः । प्रज्ञामात्राः प्राणे अर्पिताः । स एव प्राण एव प्रज्ञात्मा-नन्दोऽजरोऽमृतः । न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवा-साधुना कनीयानेष ह्येवैनं साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष उ एवैनमसाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते । एष लोकपालः । एष लोकाधिपतिः । एष सर्वेशः । स म आत्मेति विद्यात्स म आत्मेति विद्यात् ॥ ८ ॥

(भाषार्थ)-वाक् इन्द्रियको जाननेका उद्योग न करै, किन्तु वक्ताको जानै। घ्राणेन्द्रियके विषय गन्धको जाननेकी इच्छा न करै किन्तु गन्धलेनेवालेको जानै। रूपको जानने की इच्छा न करै किंतु देखनेवालेको जानै। श्रोत्र इंद्रियको जाननेकी इच्छा न करै किंतु सुननेवालेको जानै। अन्नरस को जाननेकी इच्छा न करै किंतु रस लेनेवालेको जानै। कर्मको जाननेकी इच्छा न करै, किंतु कर्त्ताको जानै। सुख और दुःखको जाननेकी इच्छा न करै, किंतु सुख दुःखका अनुभव करनेवालेको जानै। आनन्द रति और सन्तानो-त्पत्तिको जाननेकी अभिलाषा न करै किंतु आनन्द रति और प्रजातिका अनुभव करनेवालेको जानै। गतिको जानने की अभिलाषा न करै, किंतु गमनकर्त्ताको जानै। मनको जाननेकी इच्छा न करै किंतु मनन करनेवालेको जानै। वक्तव्य विषय आदि ये दश ही भूतमात्रा हैं, ये इंद्रियोंका आश्रय करके रहती हैं। वाक् आदि दश इंद्रियें ही अधि-भूत हैं। जब विषय नहीं रहते तो सब इंद्रियोंका अस्तित्व भी नहीं रहता। इन दोनोंमेंसे एकके न रहने पर दूसरेका अभाव होजाता है। ये इंद्रियें और इन्द्रियावयव नाना नहीं

है। जैसे रथके सब अरोंमें नेमि स्थित है और सब अरे नाभिमें स्थित है। तैसे ही सब विषय इंद्रियोंमें और सब इंद्रियें प्राणमें प्रतिष्ठित हैं। यह प्राण ही प्रज्ञात्मा, अजर, अमर और आनन्दस्वरूप है। वह शास्त्रमें लिखे कर्मसे बढ़ता नहीं है और शास्त्रनिषिद्ध कर्मसे क्षीण नहीं होता है। परमेश्वर जिसको इस लोकमेंसे ऊपरके लोकमें लेजाना चाहता है उससे ही अच्छे कर्म कराता है और जिसको अधोलोकमें लेजाना चाहता है उससे ही अशुभ कर्म कराता है। यही लोकपाल है, यही सकल लोकोंका स्वामी है, यही सर्वेश्वर है, इसको ही जो आत्मा जानता है वह आत्म-ज्ञानी है ॥ ८ ॥

तृतीय अध्याय समाप्त ॥

—o—

चतुर्थ अध्याय ।

अथ गार्ग्यो ह वै बालाकिरनूचानः संस्पृष्ट आस सोऽवसत् उशीनरेषु। स वसन्मत्स्येषु कुरुपांचालेषु काशिविदेहेषु इति। स हाजातशत्रुं काश्यमेत्यो-

श्च ब्रह्म ते ब्रवाणीति। तं होवाचाजातशत्रुः। सहस्रं दद्मः इत्येतस्यां वाचि जनको जनक इति वा उ जना धावन्तीति ॥ १ ॥

(भाषार्थ)-गर्गगोत्री बालाकिने वेद पढ़कर सब देशों में बड़ीभारी कीर्त्ति पाई थी। वह कुछ समय तक उशीनर देशमें रहा, फिर मत्स्य कुरु पाञ्चाल काशी मिथिला आदि देशोंमें घूमा था। वह एक समय काशिराज अजातशत्रुके पास जाकर कहनेलगा, कि-मैं तुम्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश दूंगा। अजातशत्रुने उससे कहा, कि-तू ब्रह्मविद्या देगा तो मैं तुझे हजार गौएं दूंगा। इस ब्रह्मविद्याको पानेके लिये लोग ब्रह्मविद्या सिखानेवाले राजा जनकके पास जाया करते हैं ॥ १ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष आदित्ये पुरुषस्तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् सम्वादयिष्ठाः। बृहत्पाण्डरवासा अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्द्धेति। वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्द्धा भवति ॥ २ ॥

(भावार्थ)-बालाकिने उससे कहा, कि-इस आदित्यके भीतर जो पुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं। अजातशत्रुने कहा, कि-यह बात कहकर तुम अपनेको गुरु और मुझे शिष्य न समझना। परम शुद्ध विरजा ब्रह्म सकल भूतोंको पार करके स्थित है। वह सकल भूतोंका मूर्द्धा है, मैं उसकी ही उपासना करता हूं। जो उसकी उपासना करते हैं वे सब प्राणियोंके अतीत और मुकुटमणि होते हैं॥ २॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष चन्द्रमसि पुरुषस्तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः। सोमो राजान्नस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेवमुपास्त अन्नस्यात्मा भवति॥ ३॥

(भावार्थ)-बालाकिने कहा, कि-इस चन्द्रमाके भीतर वर्त्तमान जो पुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं। अजातशत्रुने कहा, कि-यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखाना, राजा सोम अन्नका आत्मा है, मैं उसकी उपासना करता हूं, जो उसकी उपासना करता है वह अन्नका आत्मा होता है॥ ३॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष विद्युति पुरुषस्तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्न सम्वादयिष्ठाः तेजस आत्मेति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेवमुपास्ते तेजस आत्मा भवति ४

(भाषार्थ)—बालाकिने कहा, कि—इस बिजलीके भीतर जो पुरुष है, मैं उसकी उपासना करता हूं। अजातशत्रुने कहा, कि—यह बात कहकर भी तुम अपना गौरव न दिखाओ जो तेजका आत्मा है, मैं उसकी उपासना करता हूं, जो उस की उपासना करता है वह तेजका आत्मा होजाता है ॥४॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष स्तनयित्नौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् सम्वादयिष्ठाः। शब्दस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेवमुपास्ते शब्दस्यात्मा भवति ॥ ५ ॥

(भाषार्थ)—बालाकि ने कहा, इस मेघ के भीतर जो पुरुष है मैं उसका उपासना करता हूं, अजातशत्रु ने कहा, कि-यह बात कहकर भी तू अपना गौरव न दिखा। जो

मेघके शब्द का आत्मा है मैं उसकी उपासना करता हूं, जो उसकी उपासना करता है वह शब्दका आत्मा होजाता है ८

स हावाच बालाकिर्य एवैष आकाशे पुरुषस्त-मेवा:मुपास इति । तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् सम्वादयिष्ठाः। पूर्णमप्रवर्त्ति ब्रह्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिः। नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा-कालात्प्रवर्त्तते ॥ ६ ॥

(भावार्थ)–बालाकि ने कहा, कि आकाशमें स्थित जो पुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, कि–तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखाना। जो पूर्णप्रवृत्ति शून्य ब्रह्म है मैं उसकी भी उपासना करता हूं.वह प्रजा और पशुओं से पूर्ण है, वह वा उसकी प्रजा पुराकाल से प्रवृत्त नहीं होती ॥ ६ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष वायौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् समवादयिष्ठाः। इन्द्रो वैकुंठोऽपराजितासेनेति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेवमुपास्ते जिष्णुर्ह वा अपराजयिष्णु रन्यतस्त्यजयी भवति ॥ ७ ॥

(भाषार्थ)—बालाकि ने कहा, कि—इस वायु के भीतर जो पुरुष है मैं उसकी ही उपासना करता हूं। अजातशत्रुने कहा, कि—तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखाना जो खुटल्लेपनसे रहित अपराजित इन्द्र है मैं उसकी ही उपासना करता हूं जो उसकी उपासना करता है वह विजयी, दूसरे से न जीता जानेवाला और दूसरों को जीतने वाला होता है॥ ७॥

स होवाच बालाकिर्य एवैषोऽग्नौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः। विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेवमुपास्ते विषासहिर्वा एष भवति।

(भाषार्थ)—बालाकि ने कहा, कि—जो अग्निके भीतर पुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, कि—यह बात कहकर भी तुम अपना गौरव न दिखाना। जो सहिष्णु वा दुःसह है मैं उसकी उपासना करता हूं, जो उसकी उपासना करता है वह उसकेसा ही होता है॥ ८॥

स होवाच बालाकिर्य एवैषोऽप्सु पुरुषस्तमेवाह-

मुपास इति । तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्‌ संवादयिष्ठाः । नाम्न आत्मेति वा अहमेतमुपास इति । स यो हैतमेवमुपास्ते नाम्न आत्मा भवति इत्यधि दैवतम्‌ ॥ ९ ॥

(भाषार्थ)—बालाकि ने कहा, कि—इस जलके भीतर जो पुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं । अजातशत्रु ने कहा, कि—तुम यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखाओ । जो नामका आत्मा है मैं उसकी उपासना करता हूं । जो उसकी उपासना करता है वह नामका आत्मा होता है । यह अधिदैवत कहा ॥ ९ ॥

अथाध्यात्मम्‌ । स होवाच बालाकिर्य एवैष आदर्शे पुरुषस्तमेवाहमुपास इति । तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्‌ संवादयिष्ठाः । प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति । स यो हैतमेवमुपास्ते प्रतिरूपो हैवास्य प्रजायामाजायते नाप्रतिरूपः ॥११॥

(भाषार्थ)—बालाकि ने कहा, कि—इस आदर्श के भीतर जो पुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं । अजातशत्रु ने कहा, कि—इस बातको कहकर भी तू अपना गौरव

न दिखा। जो प्रतिरूप है मैं उसकी उपासना करता हूं, जो उसकी उपासना करते हैं उनकी सन्तान प्रतिरूप ही होती है, और प्रकारकी नहीं होती है॥ १०॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष यन्तं पश्चाच्छब्दोऽनूदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः। द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेवमुपास्ते विन्दते द्वितीयं द्वितीयवान् भवति॥ ११॥

(भाषार्थ)—बालाकिने कहा, कि—जो प्रत्येक श्रवणमें रहता है, मैं उस ही पुरुषकी उपासना करता हूं। अजातशत्रुने कहा, कि—तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखा। जो द्वितीय और गमनशून्य है मैं उसकी ही उपासना करता हूं, जो उसकी उपासना करता है वह द्वितीय भार्याशरीरसे पुत्र पाता है और निःसन्तान नहीं होता है ११

स होवाच बालाकिर्य एवैष शब्दः पुरुषमन्वेति तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः। असुरिति वा अहमेतमुपास

इति। स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुराकालात्संमोहमेति ॥ १२ ॥

(भाषार्थ)-बालाकिने कहा कि-जो ध्वनिरूप शब्द पुरुषका अनुगामी होताहै, मैं उसकी ही उपासना करता हूं अजातशत्रुने कहा, कि-तुम यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखाओ, मैं असुकी उपासना करता हूं, जो उस की उपासना करता हैं वह स्वयं वा उसकी सन्तति कभी नाशको प्राप्त नहीं होती है ॥ १२ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष छायापुरुषस्तमेवा-हमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः। मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा-कालात्प्रमीयते ॥ १३ ॥

(भाषार्थ)-बालाकिने कहा, कि-जो छायापुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं। अजातशत्रुने कहा, कि-तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखा। मैं मृत्युकी उपा-सना करता हूं, जो मृत्युकी उपासना करता है वह स्वयं वा उसकी सन्तान कभी समयसे पहिले नहीं मरती है॥१३॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष शारीरः पुरुषस्तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः प्रजापतिरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रजायते प्रजया पशुभिः १४

(भाषार्थ) –बालाकिने कहा, कि–यह जो शरीरावच्छिन्न पुरुष है मैं उसकी उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, कि–तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखाना मैं प्रजापतिकी उपासना करता हूं, जो उसकी उपासना करता है वह प्रजा और पशुओंके द्वारा बढ़ता है ॥ १४ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष प्राज्ञ आत्मा येनैतत् पुरुष सुप्तः स्वप्नया चरति तमेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः। यमो राजेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते सर्वं हास्मा इदं श्रैष्ठ्याय यम्यते ॥ १५ ॥

(भाषार्थ)–बालाकिने कहा, कि–मैं इस प्राज्ञ स्वप्नादर्शी पुरुषकी उपासना करता हूं। अजातशत्रुने कहा, कि–तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखाना। मैं यमकी उपा-

सना करता हूं। जो यमकी उपासना करता है उसको प्रधान बनानेके लिये सब पुरुष नियमसे यत्न करते हैं॥ १८ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्त-मेवाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैत-स्मिन् संवादयिष्ठाः। नाम्न आत्मा, अग्नेरात्मा, ज्योतिष आत्मेति वा अहमेतमुपास इति। स य ह एतमेवमुपास्ते एतेषां सर्वेषां आत्मा भवति॥१६॥

(भावार्थ)–बालाकिने कहा, कि-मैं इस दक्षिणनेत्र के भीतर वर्त्तमान पुरुषकी उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, कि–तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखा मैं नामके आत्मा अग्निके आत्मा और ज्योतिके आत्माकी उपासना करता हूं। जो इसकी उपासना करता है वह सब का आत्मा होता है॥ १६ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष सव्येऽक्षन् पुरुषस्तमे वाहमुपास इति। तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवादयिष्ठाः। सत्यस्यात्मा विद्युत आत्मा तेजस आत्मेति वा अहमेतमुपास इति। स यो हैतमेव-मुपास्ते एतेषां सर्वेषामात्मा भवतीति॥ १७॥

(भाषार्थ)–बालाकिने कहा, कि–मैं इस वामनेत्रवर्त्ती पुरुषकी उपासना करता हूं । अजातशत्रुने कहा, कि-तू यह बात कहकर भी अपना गौरव न दिखा । मैं सत्यके आत्मा विद्युत्के आत्मा और तेजके आत्माकी उपासना करता हूं । जो इसकी उपासना करता है वह सबका आत्मा होता है १७

तत उ ह बालाकिस्तूष्णीमास । तं होवाचाजातशत्रुः । एतावन्नु बालाक ३ इ इत्येतावद्धीति होवाच बालाकिस्तं होवाचाजातशत्रुर्मृषा वै किल मा संवादयिष्ठाः । ब्रह्म ते ब्रवाणीति स होवाच यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्त्ता यस्य वै तत् कर्म स वै वेदितव्य इति । तत उ ह बालाकिः समित्पाणिः प्रतिचक्रम उपायानीति । तं होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमरूपमेव तत् स्याद्यत् क्षत्रियो ब्राह्मणमुपनयीत । एहि व्येव त्वा ज्ञपयिष्यामीति तं ह पाणावभिपद्य प्रवव्राज तौ ह सुप्तं पुरुषमाजग्मतुस्तं हाजातशत्रुरामन्त्रयाञ्चक्रे । बृहत्पाण्डरवासः सोमराजन्निति । स उ ह तूष्णीमेव शिश्ये

तत उ हैनं यष्ट्या विचिक्षेप। स तत एव समुत्तस्थौ तं होवाचाजातशत्रुः क्वैष एतद्बालाके पुरुषोऽशयिष्ट क्वैतदभूत्कुत एतदगादिति तत उ ह बालाकिर्न विजज्ञे ॥ १८ ॥

(भाषार्थ)-यह सुनकर बालाकि चुप होगया, तब अजातशत्रुने कहा, कि-हे बालाके! यहांतक ही तेरी विद्या और बुद्धि है ?। बालाकिने कहा, कि-हां यहां तक ही है इस पर अजातशत्रुने कहा, कि-तूने मिथ्या ही मुझे ब्रह्मविद्याका उपदेश देनेको प्रतिज्ञा की थी। हे बालाके! जो इन सब पुरुषोंका कर्त्ता है, यह चराचर विश्व जिसका कर्म है, उसको ही जानना चाहिये। तदनन्तर बालाकिने हाथ में समिधा लेकर अजातशत्रु से उपदेश लेने की प्रार्थना की। अजातशत्रुने कहा-मैं क्षत्रिय हूं, तू ब्राह्मण होकर मुझसे उपदेश लेय, यह उलटी बात है। जो कुछ भी हो, जब कि-तू मुझसे उपदेश की प्रार्थना कररहा है तो मैं तुझे अवश्य ही उपदेश दूँगा, आओ। इतना कहकर उसने बालाकिके दोनों हाथ पकड़े और सुप्त पुरुषके समीप लेगया। अजातशत्रुने उसको बृहत् पाण्डर-